भूदान-यज्ञ

भूदान-यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति का सन्देशवाहक—साप्ताहिक

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : १४

सोमवार ६ जनवरी, '६९

नववर्ष का अभिनन्दन

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि
भूतानिसमीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि
भूतानि समीक्षे॥

अगर मैं चाहता हूँ कि सारी दुनिया मेरी तरफ मित्र की निगाह से देखे, तो मैं भी सारी दुनिया की तरफ मित्र की निगाह देखूँगा।

—यजुर्वेद

अन्य पृष्ठों पर

बाबा की बातें १६२
सन् १९६९ और हम —सम्पादकीय १६३
अधिकार-लालसा से आबद्ध होना
एकता में बाधक —स्वामी शरणानन्द १६४
अतिमानस और 'साइंटिफिक
आब्जेक्टिविटी' —विनोबा १६५
शान्ति और क्रान्ति —दादा धर्माधिकारी १६६
भारतीय युवक —एम० एन० श्रीनिवास १६८
जर्मनी के विद्यार्थी··· —सतीशकुमार १७०

अन्य स्तम्भ
मुलाकातें, आन्दोलन-समाचार, सामयिक चर्चा

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी—१, उत्तर प्रदेश
फोन : ४२८५

रचनात्मक संस्थाओं का असली मकसद

मैं नहीं चाहता कि रचनात्मक काम करनेवाली संस्थाओं का संघ कांग्रेस या सरकार का प्रतिद्वन्द्वी बन जाय। यदि रचनात्मक संस्थाओं का संघ सत्ता की राजनीति में उतरने की कोशिश करेगा तो इसमें उसका अन्त हो जायेगा। सत्ता से निगाह हटाकर, यदि हम वोटरों की निःस्वार्थ और शुद्ध सेवा करने में जुट जायेंगे तो हम उन्हें रास्ता दिखा सकेंगे और उन पर असर भी डाल सकेंगे। ऐसा करने पर हमें सरकार में पहुँचने के मुकाबले कहीं ज्यादा असली ताकत हासिल होगी। एक ऐसा समय आ सकता है, जब लोग स्वयं यह कहेंगे कि वे और किसीको नहीं, बस सिर्फ हमें सत्ता में देखना चाहते हैं। उस वक्त सत्ता में पहुँचने की बात सोची जा सकती है। मैं उस वक्त तक यकीनन जिन्दा नहीं रहूँगा। लेकिन जब वह वक्त आयेगा तबतक रचनात्मक संस्थाओं का संगठन अपने में से किसी ऐसे को ऊपर ले आयेगा, जो शासन की बागडोर संभाल लेगा। उस वक्त तक भारत एक आदर्श राज्य बन चुका होगा।

प्रश्न (डाक्टर जाकिर हुसेन) : आदर्श राज्य की शुरुआत करने के लिए क्या हमें आदर्श लोगों की जरूरत नहीं होगी?

उत्तर : खुद सरकार में जाने के बदले हम अपनी पसन्द के लोगों को सरकार में भेज सकते हैं। आज कांग्रेस में सभी लोग सत्ता में पहुँचने की दौड़ में शामिल हैं। हमें सत्ता हासिल करनेवालों के हो-हल्ले में शरीक नहीं होना है। हमें सत्ता की राजनीति के छूत से एकदम किनारे रहना है। रचनात्मक संस्थाओं के संगठन का असली मकसद है राजनीतिक शक्ति पैदा करना, उस पर कब्जा करना नहीं। लेकिन अगर हम कहते हैं कि राजनीतिक सत्ता हमें इसलिए मिलनी चाहिए, क्योंकि वह हमारी मेहनत का इनाम है तो इससे हम नीचे गिरेंगे।

आज की राजनीति भ्रष्ट हो गयी है। जो इसमें शामिल होता है वही भ्रष्ट हो जाता है। हम अपने आपको इससे एकदम अलग रखें। ऐसा करने पर हमारा प्रभाव बढ़ेगा। जैसे-जैसे हम अपने आपमें स्वच्छ होते जायेंगे वैसे-वैसे अपनी ओर से बिना कोशिश किये ही जनता पर हमारा असर बढ़ेगा।

रचनात्मक कार्यकर्ताओं का काम आम लोगों के बीच में है। उन्हें गाँवों को नयी जिन्दगी देनी है, तरक्की हासिल करानी है, ज्यादा तालीम देनी है और ज्यादा ताकत देनी है।

—मो० क० गांधी

'टुवर्ड्स न्यू होराइजन', पृष्ठ : १२३-२४

www.vinoba.in

प्राथमिकता सत्य को

भभुवा अनुमंडल में जंगल की पड़ती जमीन पर कुछ गरीब लोगों ने कब्जा करके खेती करना शुरू किया। वह जमीन जंगल की होने के कारण सरकार ने उन पर कानूनी कार्रवाई की। उस सिलसिले में विनोबाजी की मदद माँगने के लिए आये हुए लोगों से उन्होंने कहा :

"सरकार उनको पकड़कर जेल में डालती है, यह अच्छा ही है। नहीं तो सरकार का कोई कानून दुनिया में नहीं चलेगा। गरीबों को समझना चाहिए कि इधर-उधर से जमीन पकड़करके अपना काम चलनेवाला नहीं है। गाँववालों को समझना चाहिए कि उनका यह कर्तव्य है कि अपनी अच्छी जमीन का हिस्सा गरीबों को दें। गरीबों का उस जमीन पर हक है। पड़ती जमीन, जिस पर अपना हक नहीं है, उस पर कब्जा कर लेना ठीक नहीं है। बाबा गरीबों का पक्षपाती जरूर है, लेकिन सत्य का पक्षपाती पहले है। सत्य को छोड़कर किसीका पक्षपात नहीं करेगा। उनको जमीन चाहिए थी तो वे अर्जी करते, माँग करते !"

गांधी के नाम में गांधी की खिलाफत

भभुवा में शराब की दो दुकानें खुल गयी हैं। उस सम्बन्ध में विनोबाजी के पास वहाँ के लोगों ने शिकायत की। उस बारे में विनोबाजी ने कहा :

"आप कहते हैं कि ये दुकानें बन्द करने के लिए आप लोगों ने महामहिम के पास अर्जी भेजी है। वे तो महान महिम हैं। लेकिन महामहिम से भी बढ़कर आपकी (जनता की) महिमा है। मान लीजिए, यहाँ गाय के गोश्त की दुकान खुले तो कोई हिन्दू वहाँ गोश्त खरीदेगा ? मैं सरकार को यह चुनौती देना चाहता हूँ कि 'सरकार यहाँ तीसरी भी दुकान खोल दे, लेकिन एक भी आदमी उसमें नहीं जायेगा।' यह हमें सरकार को दिखाना होगा कि कोई भी आदमी शराब की दुकान में नहीं जाता है।

"महामहिम का यह कर्तव्य है। उनको यह दुकान बंद करनी चाहिए। मेरी आवाज उनके कानों तक पहुँचेगी या नहीं, मुझे नहीं मालूम। लेकिन जहाँ गांधीजी की नहीं चली, वहाँ मेरी क्या चलेगी ? यह गांधी-शताब्दी का साल है। गोवा में कांग्रेस ने तय किया है कि सात साल के बाद पूर्ण शराबबन्दी करेंगे। अब सात साल के बाद आपकी (कांग्रेसवालों की) हस्ती है कि नहीं, कौन कह सकता है ? कांग्रेस ने प्रस्ताव किया है कि सात साल में एक-एक दिन काटेंगे। इस काम का आरम्भ इस साल से करते तो भी कोई बात थी। लेकिन अगले साल से किया है। मतलब, एक-एक दिन जो कटेगा वह अगले साल से। इससे बढ़कर गांधीजी का नाम लेकर उनके खिलाफ जाने की कोई सीमा नहीं है ! इससे अच्छा तो यह होता कि वे छः साल की मर्यादा रखते और इसी साल से एक-एक दिन काटते। खैर, बहुत ज्यादा टीका मैं करना नहीं चाहता। उससे वाणी दुषित होती है।

"आप लोगों की शक्ति और महामहिम की जो भावना होगी, उसकी परीक्षा होगी।"

भभुवा (शाहाबाद): ९-१२-'६८

बिहारदान में

९ दिसम्बर के 'भूदान-यज्ञ' के अन्तिम पृष्ठ पर 'मंजूषा' में जो जानकारी दी गयी है, उससे सम्बन्धित कुछ बातें स्पष्टता के लिए लिख रहा हूँ। हमारे कार्यालय में जो भी फार्म हैं, वे सादे हैं। हस्ताक्षर किये हुए समर्पण-पत्र सर्वोदय-मण्डलों या प्राप्ति-समितियों में इकट्ठे होते हैं। इनमें से विवरण प्राप्त कर कुल १२०१ गाँवों के घोषणा-पत्र हमारे अध्यक्ष के प्रतिनिधियों के कार्यालयों में दाखिल किये गये हैं। प्रत्येक व्यक्ति के समर्पण-पत्र दाखिल होते ही प्राप्ति-रसीद दी जाती है। दाखिला-बही में विधिवत दाखिल किया जाता है एवं पुष्टि की कार्यवाही की संचिका प्रारंभ होती है, जिन्हें काफी सुरक्षित रखा जाता है।

हमारे कार्यालय से इन दिनों प्रतिमाह दो-तीन लाख ग्रामदान के घोषणा-पत्र विभिन्न जिलों में भेजे जाते हैं, वैसे हम लोग यह कोशिश करते हैं कि जिन जिलों में प्राप्ति का सघन अभियान चल रहा है, वहाँ सरकारी प्रेस से सीधे फार्म चले जायें। प्रायः जिला भूदान-कार्यालयों में फार्म उपलब्ध होते हैं।

ग्रामदान के दो प्रकार के घोषणा-पत्रों के अतिरिक्त पुष्टि की कार्यवाही के लिए सात और फार्म की आवश्यकता होती है। बिहार के ग्रामदान-नियम के अनुसार कुल बीस प्रकार के फार्मों की आवश्यकता है। करीब दस हजार ग्रामदान के लिए पुष्टि के बाद काम आनेवाले फार्म भी हम लोगों ने उपलब्ध कर रखे हैं। ग्रामदान के फार्म के अतिरिक्त हमारे भूदान के कार्य से सम्बन्धित फार्मों का भी कामलायक स्टाक रखना पड़ता है। कमेटी गांधी-शताब्दी तक अवितरित भूमि का निस्तार करना चाहती है, इस हेतु इन दिनों भूमि-वितरण से सम्बन्धित फार्म आवश्यकतानुसार जिला कार्यालयों एवं वितरण-टोलियों को भेजे जाते हैं।

'भूदान यज्ञ' के पाठकों को यह भ्रम न हो कि बिहार में करीब चालीस हजार ग्रामदान हुए, जिनके लिए करीब चालीस लाख परिवारों की ओर से समर्पण-पत्र दाखिल हुए वे सब हमारे कार्यालय में केन्द्रित होकर जमा हो रहे हैं, जिनको रखने का हमारे यहाँ स्थानाभाव है।

—निर्मलचन्द्र
मंत्री, बिहार भूदान-यज्ञ कमेटी, पटना–३

अग्रलेख/सम्पादकीय

सन् १९६९ और हम

नया साल कई बातों में नया होता है। हमेशा नया होता है ! लेकिन यह साल तो सबके लिए नया होते हुए भी हमारे लिए खास तौर पर नया है। सन् १९६९ गांधी-जन्म-शताब्दी का वर्ष है ; और, राज्यदान का भी। बिहार से राज्यदान शुरू होगा।

हममें से कोई ग्रामदान का काम करता हो, खादी में लगा हो या अन्य किसी सरकारी-गैरसरकारी कार्य द्वारा समाज की सेवा करता हो, ऐसे अनेक लोग हैं जो अपने को एक बड़े गांधी-परिवार का सदस्य मानते हैं और गांधी-विचार से जीवन की प्रेरणा प्राप्त करते हैं। ऐसा परिवार भारत तक सीमित न रहकर अब विश्व भर में फैल रहा है।

गांधी-जन्म-शताब्दी का वर्ष राज्यदान का भी वर्ष हो, क्या इसमें इतिहास का कोई संकेत है, या सिर्फ विकास का एक संयोग ? भारत में ग्रामदान, तथा योरप में रूस के आक्रमण का चेक-प्रतिकार, ये दो गांधी-विचार के नये-से-नये रूप हैं जो गांधी के बाद के जमाने में प्रकट हुए हैं। इन दोनों में अहिंसा की शक्ति का व्यापक और बिलकुल नयी परिस्थितियों में दर्शन हुआ है।

जिसे नया समाज (काउंटर सोसाइटी) कहते हैं, उसकी नींव राज्यदान से शुरू नहीं होगी तो किससे होगी ? इससे बड़ा प्रतिकार दूसरा क्या होगा कि अनीति की जिस व्यवस्था से हम पीड़ित हैं उसे जड़ से ही बदल दें ?

ग्रामदान में हमने ग्राम-स्वामित्व को नये समाज का आधार माना है। दुनिया परिवार का स्वामित्व जानती है, वह सरकार का स्वामित्व भी जानती है, लेकिन उसे ग्राम-स्वामित्व नहीं मालूम है। वह जानना चाहती है कि ग्राम-स्वामित्व के आधार पर ग्राम-व्यवस्था कैसी होगी ? राज्य-व्यवस्था कैसी होगी ? कैसे होगी खेती, कैसे चलेगी शिक्षा, और कौन करेगा न्याय ? क्या रूप होगा मनुष्य और मनुष्य के नये सम्बन्धों का ? समाज-रचना के ये प्रयोग सन् १९६९ में शुरू हो जाने चाहिए।

चार राज्यों के इस मध्यावधि चुनाव में हमने कहना शुरू कर दिया है : अच्छे उम्मीदवार को वोट दो, चाहे वह किसी दल का हो या किसी भी दल का न हो। यह बात बिलकुल नयी है। दिल से दल को निकालने से भूमिका बनती है दलमुक्त लोकतंत्र की। दुनिया 'एक दल का लोकतंत्र' देख चुकी है, 'एक से अधिक दलों का लोकतंत्र' भी देख चुकी है, लेकिन बिना दल के भी लोकतंत्र चल सकता है—बल्कि वह आज के लोकतंत्र से कहीं ज्यादा अच्छा और सच्चा होगा—यह बात लोगों की कल्पना के बाहर हो गयी है। लोग अब भी यह नहीं समझ पा रहे हैं कि अगर दल रहेंगे तो स्वयं लोकतंत्र समाप्त हो जायेगा, इसलिए अगर लोकतंत्र को रखना है तो दलों को समाप्त करना होगा। जाहिर है कि अब प्रयोग दलमुक्त लोकतंत्र का होना चाहिए। यह एक सत्य है जो चुनौती बनकर सामने आया है। भारत के कई राज्यों में किसी तानाशाह ने सत्ता नहीं छीनी, लेकिन जब राजनैतिक नेता न सरकार बना सके, और न चला सके, तो उनकी विफलता के कारण राष्ट्रपति-शासन लागू हुआ। जब दल सरकार भी नहीं बना या चला सकते तो उनका प्रयोजन क्या रहा ?

ग्राम-स्वामित्व यानी स्वामित्व-मुक्त ग्राम व्यवस्था तथा दलमुक्त लोकतंत्र ! ये दो प्रयोग हैं जो हमारे पुरुषार्थ को पुकार रहे हैं। वस्तुतः सन् १९६९ में बिहार के राज्यदान के बाद गाँव की मुक्ति का अभियान शुरू होगा। दूसरा होगा क्या ? सन् १९४७ में विदेशी सत्ता से मुक्ति मिली थी। सन् १९६९ में हमारे गाँवों की पटना और दिल्ली की सत्ता से मुक्ति की शुरुआत होनी चाहिए। क्या हम मुक्ति के इस अभियान के लिए तैयार हैं ? अगर नहीं तो कब तैयार होंगे ?

हमारे राजनैतिक नेता जिस तरह विफल हुए हैं—और आगे भी उनके सफल होने की कोई संभावना नहीं दिखाई देती—उससे यह सिद्ध हो गया है कि दलों के हाथों में न हमारी स्वतंत्रता सुरक्षित है न लोकतंत्र। समाज में कोई नेतृत्व जैसे रहा ही नहीं। सत्ता और संगठन की एक भयंकर रिक्तता पैदा हो गयी है। ऐसी हालत में ग्रामदानी ग्राम-सभाओं का संगठन अंतिम उपाय है, जिससे जन-जीवन की यह रिक्तता भरी जा सकती है।

लोकतंत्र, आर्थिक योजना, और शिक्षण, सबकी समान स्थिति है। यह स्थिति देखकर अब कुछ विद्वान और विशेषज्ञ भी मानने लगे हैं कि आज जिस तरह का राजनैतिक और प्रशासकीय संगठन चल रहा है उसमें किसी योजना का चलना संभव नहीं है। नयी योजना के लिए नयी शक्ति चाहिए। वह शहरों से नहीं आयेगी। शहरों में मध्यम वर्ग अपने वर्ग-हित में व्यस्त है। कारखाने का मजदूर अपनी मजदूरी और महँगाई के आगे सोचता नहीं। इसलिए गाँव के सिवाय दूसरा कोई स्रोत नहीं है जहाँ से नयी शक्ति निकल सके। और, अब युग भी वर्ण, जाति या वर्ग की 'क्रांति' का नहीं रहा। अब क्रांति का मुख्य मोर्चा है शहर बनाम गाँव। लेकिन गाँव अभी इस क्रांति के लिए पूरी तरह जगा नहीं है। उसे जगाना है, और स्वत्व की रक्षा के लिए तैयार करना है, ताकि वह अपने हाथ में आनेवाली सत्ता को सँभाल सके। आज तक जो क्रांतियाँ हुई हैं उनमें सत्ता एक समुदाय के हाथ से दूसरे समुदाय के हाथ में हस्तांतरित होती रही है। अब वह दल के हाथ से निकलकर जनता के हाथ में, और शहर के हाथ से निकलकर गाँव के हाथ में जायेगी। इस दृष्टि से ग्राम-स्वराज्य में सत्ता का हस्तांतरण तो है ही, केन्द्रित सत्ता के लोप का प्रारम्भ भी है, क्योंकि अगर गाँव केन्द्रित सत्ता के प्रभुत्व से मुक्त नहीं होता तो उसके स्वराज्य का कोई अर्थ नहीं रह जाता।

सन् १९६९ में 'अच्छा उम्मीदवार', और सन् १९७२ में 'अपना उम्मीदवार' : ये दलमुक्ति की मंजिलें हैं। सन् १९६९ से ही तैयारी शुरू है सन् १९७२ की। सन् १९६९ पूरे तीन वर्षों का अवसर लेकर शुरू हो रहा है। इसलिए हमें तिगुने उत्साह और आत्मविश्वास के साथ उसमें प्रवेश करना है। हम तैयार तो हैं ? •

अधिकार-लालसा से आबद्ध होना एकता में बाधक

—राष्ट्रीय एकता के प्रश्न पर स्वामी शरणानन्द के उद्‌गार—

एकता कैसे होगी ? इसका अचूक उपाय तभी स्पष्ट होगा जब हम भिन्नता क्यों होती है, इसे भलीभाँति जान लें। भिन्नता के मूल में हमारी अपनी भूल क्या है ? इस बात पर अपनी-अपनी दृष्टि से सभी को विचार करना चाहिए। हमारे दैनिक जीवन में अपने-पराये की बात कब उत्पन्न होती है ? जब हम यह भूल जाते हैं कि शरीर का, जिसे हम अपना मानते हैं, संसार और समाज से अविभाज्य सम्बन्ध है। इस मूल भूल से ही परस्पर दूरी-भेद, भिन्नता का जन्म होता है और यही सभी संघर्षों का मूल है। जिस शरीर को हम अपना मानते हैं, क्या उस पर हमारा सदा के लिए स्वतंत्र अधिकार है ? उसे जब तक चाहें, जैसा चाहें रख सकते हैं ? तो कहना होगा कि कदापि नहीं। हाँ, यह सभी कह सकते हैं कि मिले हुए शरीर का कुछ काल उपयोग करने में किसी सीमा तक स्वाधीनता है। अब यह विचार करना चाहिए कि मिली हुई वस्तु, योग्यता, शरीर आदि का अच्छे-से-अच्छा उपयोग क्या हो सकता है। मेरे जानते इस समस्या का समाधान यही हो सकता है कि मिली हुई वस्तु, योग्यता, सामर्थ्य के द्वारा कोई ऐसा कार्य न किया जाय, जो दूसरों के लिए अहितकर हो।

जब मानव अपने जीवन में उन सभी प्रवृत्तियों का अन्त कर देता है, जो दूसरों के लिए अहितकर हैं, तब अपने आप प्रत्येक भाई-बहन के जीवन में उन सर्वहितकारी प्रवृत्तियों की स्वतः अभिव्यक्ति होती है, जो परस्पर-एकता में हेतु है। इस दृष्टि से भिन्नता का कारण एकमात्र अहितकर प्रवृत्तियों से भिन्न कुछ नहीं है। अब विचार करना होगा कि जीवन में अहितकर प्रवृत्तियों का जन्म ही क्यों होता है ? मेरे जानते जब मानव पराश्रय के द्वारा सुख-सुविधा, सम्मान का भोग करना पसन्द करता है तभी अहितकर प्रवृत्तियों का जन्म होता है, जो भेद और भिन्नता का मूल है। सुख-सुविधा सम्मान की वासनाओं ने ही पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन में अनेक भिन्नताओं को उत्पन्न कर दिया है। इतना ही नहीं, अपने में जो अपना अविनाशी जीवन है उससे भी मानव विमुख हो गया है और जो सर्वाधार, सभी का अपना है उसकी भी, विस्मृति हो गयी है, जिसका भयंकर परिणाम यह हुआ है कि व्यक्तिगत जीवन में शांति तथा स्वाधीनता नहीं है तथा पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में अविश्वास तथा संघर्ष उत्पन्न हो गया है।

आज हम लोग परस्पर-एकता, शांति, स्वाधीनता आदि दिव्य जीवन की खोज करने में लगे हैं। पर बड़े ही दुःख की बात तो यह है कि इसका उपाय अपने में नहीं खोजते। उसके लिए भी परापेक्षा ही करते हैं। जब तक इस मूल का अन्त न होगा तब तक जो सत्य सभी का है, सभी में है, सदैव है, उसकी प्राप्ति नहीं होगी और उसके बिना वास्तविक एकता संभव नहीं है।

गम्भीरता से विचार कीजिए कि क्या अधिकार-लालसा से रहित कर्तव्य-परायणता के बिना कभी भी दो व्यक्तियों, वर्गों, मजहबों, देशों आदि में एकता हो सकती है ? तो कहना होगा कि अधिकार-लालसा में आबद्ध रहने से एकता सर्वथा असंभव है। यदि एकता हो सकती है तो एकमात्र अपने अधिकार को त्यागकर दूसरों के अधिकारों की समुचित रक्षा करने से ही हो सकती है। अब विचार करना है कि हम पर दूसरों के अधिकार क्या हैं, यह तो सर्वमान्य होगा कि प्राप्त बल के द्वारा किसीको किसी प्रकार की क्षति न पहुँचायें, अपितु दूसरों के काम आयें। यहाँ तक कि उसके बदले में सेवक कहलाने की कामना भी न करें। सेवा करें, सेवक न कहलायें। त्याग करें, त्यागी कहलाने की रुचि न रखें। तब कहीं हमारे और दूसरों के बीच वास्तविक एकता सुरक्षित रह सकती है, जिसकी आज मानव आवश्यकता अनुभव करते हैं।

अधिकार-लोलुपता ने ही मानव को मानव नहीं रहने दिया। अधिकार मिलने पर प्रलोभन और न मिलने पर क्षोभ तथा क्रोध उत्पन्न होता है। अब महानुभाव विचार करें कि प्रलोभन तथा क्षोभ एवं क्रोध में आबद्ध मानव कैसे वास्तविक एकता के साम्राज्य में प्रवेश पा सकता है ? ज्यों-ज्यों अधिकार मिलता जाता है, त्यों-त्यों प्रलोभन भी बढ़ता जाता है और बलपूर्वक अधिकार छीनने से दूरी-भेद, भिन्नता बढ़ती ही जाती है, जिसका अनेक घटनाओं से अनुभव हुआ है।

वास्तव में तो कर्तव्य-पालन में ही मानव का अधिकार है, जिसका उपयोग मानव प्रत्येक परिस्थिति में स्वतंत्रतापूर्वक कर सकता है। कर्तव्यपरायण होने पर किसी बाह्य नेता, गुरु तथा शासक की अपेक्षा नहीं रहती। प्रत्येक मानव स्वाधीनतापूर्वक अपना गुरु, नेता और शासक हो सकता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि हमें गुरुजनों-नेताओं तथा शासकों के प्रति आदर तथा सद्‌भाव नहीं रखना चाहिए। **मानव को सभी को आदर तथा प्यार देना है सभी के प्रति सद्‌भाव रखना है, यह हम पर सभी का अधिकार है। सभी के अधिकारों की रक्षा ही अपना कर्तव्य है। इस दृष्टि से कर्तव्य-पालन से ही सभी के अधिकार सुरक्षित होते हैं। जिसके द्वारा सभी के अधिकार सुरक्षित होते हैं, उसमें अधिकार-लालसा की गंध भी नहीं रहती। अधिकार-लालसा से मुक्त मानव कर्तव्य-निष्ठ होता है।**

कर्तव्य-परायणता ही मानवता है और मानवता की अभिव्यक्ति में ही वास्तविक एकता है और उसीमें जीवन है। दूरी-भेद, भिन्नता के रहते हुए न तो मानव स्वाधीनता ही पाता है और न उसमें उदारता तथा प्रेम की अभिव्यक्ति ही होती है। उदारता के बिना जीवन जगत् के लिए, स्वाधीनता के बिना अपने लिए एवं प्रेम के बिना प्रभु के लिए उपयोगी नहीं होता। आज मानव मानव-जीवन के महत्त्व को भूल गया है। उसीका यह परिणाम है कि जीवन उदारता, स्वाधीनता एवं प्रेम से भरपूर नहीं है। यदि हम ज्ञान-विरोधी विश्वास, सम्बन्ध एवं कर्म का अंत कर दें तो बड़ी सुगमतापूर्वक जीवन की सभी समस्याएँ हल हो सकती हैं। इस अनुभव-सिद्ध सत्य को अपनाये बिना कोई भी समस्या हल नहीं हो सकती। अतः प्रत्येक मानव सत्य को अपनाकर सभी के लिए उपयोगी हो जाय।

बोधगया : ८-१०-'६८

www.vinoba.in

अतिमानस और 'साइंटिफिक आब्जेक्टिविटी'

• आध्यात्मिक आरोहण-अवरोहण • शब्द, भाष्य और संदर्भ

मनमोहन : आप जिसे 'अतिमानस' कहते हैं, उसकी व्याख्या कभी-कभी 'साइंटिफिक आब्जेक्टिविटी' जैसी है, ऐसा आपके वचनों से लगता है। अरविन्द ने जिस अतिमानस की बात कही थी, उसमें विश्व के साथ आत्मैक्य तथा कुछ 'मिस्टिकल' अनुभव की बातें हैं। तो क्या इन दोनों कल्पनाओं में कुछ अन्तर है या एक ही वस्तु के दोनों अलग-अलग 'आस्पेक्ट्स' हैं, अरविन्द के अतिमानस का क्या 'साइंटिफिक आब्जेक्टिविटी' एक सोपान है ?

विनोबा : यह देखना होगा कि दोनों कल्पनाओं में क्या फरक है तथा उनको व्यक्त करने की भाषा में क्या फरक है ? अरविन्द की कल्पना वेद से ली गयी है—यद्यपि उसे 'ओरिजिनल' भी माना जाता है। अवतारवाद की यह कल्पना है। मनुष्य बिलकुल ऊँचा चढ़ते-चढ़ते परमात्मा के पास पहुँच जाता है और उसे मोक्ष मिल जाता है। तो एक तत्त्वज्ञान यह है कि मोक्ष-प्राप्ति के बाद मनुष्य को देह से छूटना ही चाहिए। उसके बाद वह कुछ काम नहीं कर सकता। अगर प्रारब्ध के कारण वह मोक्ष-प्राप्ति के बाद कुछ दिन जीये तो कुछ लोक-संग्रह भले ही करे। मगर दूसरा विचार यह है कि मनुष्य ऊँचे चढ़कर, परमात्मा के पास पहुँचकर मोक्ष प्राप्त करके फिर नीचे उतर आये और समाज में काम करे। वह बिलकुल नीचे उतरेगा नहीं, मन के ऊपर अतिमानस के स्तर पर वह रहेगा। तो उसका अवतार होगा। यह विचार वेदों में है और गीता में भी वही है। मगर शांकर-विचारक यह नीचे उतरने की बात नहीं मानते। वे कहते हैं कि अवतार होना, न होना तो भगवान के पल्ले छोड़ा जाय। मनुष्य को उसका अधिकार नहीं है। मोक्ष के बारे में भक्तिमार्गी तो यह कहते हैं : 'हरिनो भक्त मुक्ति न भागे, भागे जन्म-जनम अवतार रे।' खैर, यह तो कोई तत्त्वज्ञान नहीं है, यह भक्ति की महिमा प्रकट करने का एक ढंग है। इस तरह से इसके बारे में विचार है।

तो अरविन्द का यह मानना है कि मनुष्य मोक्ष के बाद नीचे उतरकर अतिमानस के एक नीचे के स्तर पर रहकर काम करेगा। यह तो कोई असामान्य पुरुष ही कर सकेगा। हरेक के लिए यह संभव नहीं है। तो सामान्य मनुष्य के लिए मेरा यह सुझाव है कि वह मानस के थोड़ा ऊपर, अतिमानस के 'साइंटिफिक आब्जेक्टिविटी' के स्तर पर उठकर काम करे। मानस से ऊपर मोक्ष तक सारा क्षेत्र अतिमानस का माना जायगा। मगर मैं उसके एक विशेष हिस्से, मानस से ऊपर का ही, बहुत ऊँचा नहीं, ऐसे स्तर की बात आम लोगों के लिए करता हूँ। मैं आरोहण की बात करता हूँ और वह अवरोहण की, चढ़कर फिर उतरने की बात करता है।

यह ठीक है कि जो आत्मदर्शन का अनुभव लेकर लौटा होगा उसको वह ज्ञान तथा व्यापक दृष्टि होगी, वह सिर्फ 'साइंटिफिक आब्जेक्टिविटी' के स्तर पर चढ़नेवाले को नहीं होगी। पहाड़ के शिखर पर चढ़कर नीचे उतरनेवाले को जो दर्शन होगा, वह नीचे से थोड़ा ऊपर चढ़नेवाले को नहीं होगा, मगर वह ऊपर से नीचे उतरनेवाली भूमिका तो जो अवतार हो उसकी ही हो सकती है। यह दूसरी भूमिका सामान्य जन की, संत की हो सकती है। अवतार में जो दृष्टि की व्यापकता अपेक्षित है, वह संत में नहीं है।

हमने पीरपंजाल में वैसा किया, तीन-एक हजार फुट चढ़े, फिर डेढ़-एक हजार उतर गये। अगर हम बिलकुल ऊपर ही समाधि लगाकर बैठ जाते तो वह मोक्ष की स्थिति होती।

धर्मदेव : वेद में यह विचार कहाँ है ? किस वेद में ?

विनोबा : वेद के किसी एक वचन में ढूंढ़ने की जरूरत नहीं। यह विचार तो उसमें जहाँ देखो वहीं भरा पड़ा है।

धर्मदेव : ऋग्वेद में भी है ?

विनोबा : कुछ लोग मानते हैं कि वेद एक आदिमानव के विचारों का संग्रह है और इसी दृष्टि से यानी उस आदिमानव का मन कैसे काम करता था, यह जानने की दृष्टि से अध्ययन करते हैं। दूसरे यह मानते हैं कि यह धर्म-विचार का मूल उद्गम-स्थल है। यास्क ने इन दोनों दृष्टियों से उसका भाष्य किया है। मेरा अपना मानना है कि वेद में एक पूर्ण मानव के विकसित मन का दर्शन मिलता है। बालक के जैसा कोई अविकसित मन नहीं। उस जमाने में लोग तो आदिम अवस्था में थे ही, लेकिन उनमें कुछ हो गये, जिनको ध्यान-योग सधा और उन्हें अन्तर का दर्शन हुआ। और ध्यान अगर एक ध्रुव जैसे लड़के को या किसी वृद्ध को सधे तो आखिर ध्यान से प्राप्त दर्शन तो दोनों को ही होगा। उस जमाने में शब्द नये बन रहे थे, इसलिए उनके अर्थ बँधे हुए नहीं थे, व्यापक थे। इसलिए उसमें से हम गहरे अर्थ ले सकते हैं।

मनमोहन : लेकिन कुछ लोगों का यह मानना है कि किसी पुराने ग्रन्थ के शब्दों में हम जो अर्थ पढ़ते हैं, वह उसके रचयिता के मन में नहीं भी रहा हो, ऐसा हो सकता है। पुराने शब्दों का नये अर्थ में उपयोग, उनके अर्थों का विस्तार हम भी अहिंसक क्रान्ति का एक तरीका मानते हैं। वैसे ही जमाने से हुआ है और आज हम जो 'कंटेंट' उस शब्द में पाते हैं, वह उस जमाने में जो लिखनेवाले थे उनके विचार में नहीं था।

विनोबा : यह ठीक है। मगर वैसा करने का अधिकार हमको है। ऋषि तो मंत्र-द्रष्टा होता है, मंत्र-कर्ता नहीं। इसलिए उस मंत्र के सारे अर्थों का दर्शन उसे भी होता है, ऐसा नहीं। उस मंत्र पर वह एक भाष्य लिखे और मैं—जिसे उसका दर्शन नहीं हुआ है—वह भी एक भाष्य लिखे तो यह संभव है कि उसका गलत और मेरा ही सही साबित हो। एक बार मंत्र उसने दे दिया तो फिर वह सबकी संपत्ति बन जाती है, उसकी नहीं रह पाती। इसलिए आज जो अर्थ मैं उसमें से लेता हूँ वह उसके रचयिता के मन में हो,→

शान्ति और क्रान्ति : दादा धर्माधिकारी

www.vinoba.in

आज दुनिया में पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी में बहुत फर्क पड़ गया है। तरुणों की क्रान्ति आज उच्छृङ्खल रूप ले रही है। दुनिया में यह एक अपूर्व घटना है। यह कोई ऐतिहासिक घटना है या नैसर्गिक घटना, या वैज्ञानिक प्रक्रियाओं का परिपाक, इसको समझने के पहले ही प्रतिकार की योजना हम बना लेते हैं।

सारी क्रान्तियों की परिसमाप्ति शान्ति में होगी, यह असल में क्रान्तकारियों की कल्पना रही है। परन्तु आज हो क्या रहा है, शान्ति और क्रान्ति, दोनों एक-दूसरे के मुकाबिले में खड़ी हैं। यह क्यों हो रहा है? शान्ति का भी एक पक्ष हो, एक बाजू हो, यह एक अनहोनी-सी घटना है। असल में शान्ति का कोई पक्ष नहीं हो सकता। वह सार्वत्रिक है। आज आप शान्ति का एक पक्ष इसलिए देख रहे हैं कि शान्ति भी एक कल्पना है, क्रान्ति भी एक कल्पना है, शान्ति भी एक विचार और क्रान्ति भी एक विचार।

क्रान्तिवादी बनाम शान्तिवादी

जब जीवन का कोई एक आयाम, जीवन का कोई एक अंग तत्त्व में बदल जाता है, तब संघर्ष शुरू हो जाता है। जीवन कई तरह के अंगों से बना है। उनमें क्रान्ति और शान्ति जीवन के अनिवार्य अंग हैं। लेकिन जीवन का कोई एक अंग तत्त्व में परिणत हो जाता है, तब वह घनीभूत हो जाता है, फिर उस घनीभूत अंग का विचार बन जाता है, और जहाँ जीवन और विचार अलग-अलग हुए वहाँ दो विचार एक-दूसरे के मुकाबिले खड़े हो जाते हैं। ये दो विचार जब मुकाबिले में खड़े होते हैं तब वे वाद बन जाते हैं। उसी तरह शान्ति और क्रान्ति के भी दो सिद्धान्त बन गये हैं और दोनों वाद हो गये—शान्तिवाद, क्रान्तिवाद। एक क्रान्तिकारी खड़ा हो गया और एक शान्तिवादी खड़ा हो गया। शान्तिवादी अपने को 'पैसिफिस्ट' कहलाने लगा।

जीवन के दो टुकड़े

पुराने काल में हिंसा के विरोध में से अहिंसा का आरम्भ हुआ और अन्त में अहिंसा एक वाद बना—बौद्धों और जैनों ने उसका सिद्धान्त बनाया। सिद्धान्त का व्यवहार के साथ बहुत ही कम सम्बन्ध आता है, तो अब जीवन के दो टुकड़े बन गये—व्यवहार और सिद्धान्त। सवाल है, कौन किसके पीछे चले? व्यवहार सिद्धान्त के पीछे चले, या व्यवहार के पीछे सिद्धान्त चले। सिद्धान्तवादी ध्येयनिष्ठ कहलाया, स्वप्न-रंजन करनेवाला। उस सपने को वह अपने जीवन में चरितार्थ करना चाहता है। 'यूटोपियन' एक उदात्त कल्पना के पीछे चलनेवाला, और दूसरा है 'प्रेगमेटिक'। व्यवहारवादी यह कहता है कि व्यवहार के अनुरूप सिद्धान्त को चलना चाहिए। अब इन दोनों से भिन्न एक तीसरा चला, विज्ञानवादी, वस्तुवादी। वस्तुवादी की दृष्टि वैज्ञानिक है। वह यह कहता है कि केवल सिद्धान्तवादी और केवल व्यवहारवादी वैज्ञानिक नहीं हैं। वे हमारे काम के नहीं हैं। अब यह जो वस्तुवादी है—यहाँ वस्तुवादी से मेरा मतलब है समाज-परिवर्तन की प्रक्रिया में जो वस्तुवादी है—यह वस्तुवादी कहता है सारे सिद्धान्तों की कसौटी व्यवहार में है। यहाँ व्यवहार माने आचरण। तो सिद्धान्त आचरणीय होना चाहिए। इस पर सिद्धान्तवादी कहता है कि सिद्धान्त आचरणीय हो जायगा तो आचरण ही सिद्धान्त होगा। फिर अलग से सिद्धान्त की जरूरत ही नहीं। इसका मतलब यह है कि प्रगति रह ही नहीं जाती, प्रगति रुक जाती है। जीवन में कोई दिशा नहीं, कोई मकसद नहीं, आदर्श का कोई सितारा नहीं, तो प्रगति होगी ही नहीं। इस पर व्यवहारवादी कहता है, जो सिद्धान्त आचरणीय नहीं है, वह हमारे किस काम का? पुराने शास्त्रकारों ने इसको नाम दिया है 'ख-पुष्प'-आसमान का फूल। इसके दो प्रतीक हैं—पारस-पत्थर और वृत्त को चौकोर में बदल देना। दोनों असम्भव हैं। मनुष्य ने पारस-पत्थर की खोज की, उसमें से रसायन विज्ञान आ गया। पारस-पत्थर लोहे को सोना बनाता है, कीमिया करता है। इस प्रकिया में से रसायन-शास्त्र निकला और वृत्त को चौकोर बनाने की प्रक्रिया में से ज्यामिति (भूमिति) आयी। नतीजा यह हुआ कि दुनिया के विचारकों ने, बुद्धिमानों ने जीवन में आदर्श का स्थान अनिवार्य माना।

जीवन का प्रयोजन

आज दुनिया भर में तरुणों का विद्रोह हो रहा है। उसमें दो-तीन प्रेरणाएँ काम कर रही हैं। अस्तित्वाद की प्रेरणा है, झेन-बुद्धिज्म (Zen Budhism) की प्रेरणा है और तंत्रवाद की भी प्रेरणा इसमें है। अस्तित्ववादी कहता है, जीवन जो है सो है। उसमें कोई मतलब मत खोजो। जीवन का प्रयोजन खोजना गलत है। जीवन है उसको स्वीकार करो। प्रयोजन की खोज में लगोगे तो जीवन-विमुख बन जाओगे। अलबर्टकाम कहता है कि जीवन में कोई मतलब नहीं ऐसा मैं मानता हूँ, फिर भी देखता हूँ कि विश्व में कोई ऐसा प्राणी भी है, जो जीवन के मतलब की खोज में है। वह प्राणी मनुष्य है।

→ यह कोई जरूरी नहीं। ऐसा कानून के 'इंटरप्रिटेशन' में भी होता है। उसमें कुछ 'प्रेसिडेंस' भी देखा जाता है सही, मगर उसको गौण स्थान है।

फिर हमको कहते हैं कि अमुक 'कंटेक्स्ट' में उसका अमुक अर्थ या 'कंटेंट' था वह 'कंटेक्स्ट' भी जमाने के साथ बदलता है। उस जमाने में उस 'कंटेक्स्ट' का जो अर्थ था वह आज बदल गया है।

आज हम कहीं बेहतर स्थिति में हैं। हमारे पास वेद के शब्दों के सारे 'इंडेक्स' पड़े हैं। कौन शब्द कितनी बार आया है—दो-दो, तीन-तीन शब्द एकसाथ कितनी बार आये हैं, ये सारे आज हमें उपलब्ध हैं। उन सारे वाक्यों को हम सामने रखकर चिंतन कर सकते हैं।

विज्ञान में एक शब्द को एक अर्थ देने की कोशिश होती है। 'प्रिसिजन' होता है। 'मैथेमेटिक्स' में आप थोड़ा भी इधर-उधर नहीं कर सकते। कानून में भी एक ही अर्थ डालने की कोशिश होती है, फिर भी वकीलों की करामात से उनमें से दो-दो अर्थ निकल आते हैं! मंत्र में इसका उल्टा होता है। कोई भी उसका स्वतंत्र अर्थ कर सकता है। ज्ञानदेव के भजनों पर मैंने ध्यान किया है और 'ज्ञानदेव-चिंतनिका' छपी है। दूसरे को भी ध्यान वही हो, यह मैं दावा नहीं करता।

[दिनांक १-१०-'५६ को हुई चर्चाओं से।]

www.vinoba.in

अन्त में हुआ क्या ? केवल व्यवहारवादी धीरे-धीरे किसी एक 'स्वर्ग' को सामने रखने लगा। टामस मोर ने इसे 'यूटोपिया' कहा। फिर उसने कहा, "इस आदर्श समाज की ओर बढ़ना ही क्रांति है। और ऐसे समाज की ओर बढ़ने की प्रक्रिया ही क्रान्ति की प्रक्रिया है। इस आदर्श समाज की ओर जाने की दो प्रक्रियाएँ हैं, एक क्रान्ति की प्रक्रिया और दूसरी संयोजन की। सारा संयोजन आदर्श की खोज के लिए होता है।"

व्यवहारवादी

अब यह जो केवल व्यवहारवादी है, उसका नाम हैं पालिटिशियन। यह पालिटिशियन वस्तुवादी नहीं है—व्यवहार अलग चीज है, वस्तु अलग चीज है। व्यवहार भी एक 'फिक्शन' है, कल्पना है। व्यवहार को कभी पकड़ नहीं सकते। जिसे आप व्यवहार कहते हैं, वह सबसे ज्यादा अव्यावहारिक है। कैसे ? व्यवहार का सिद्धान्त क्या है ? किसी पर सहसा भरोसा नहीं करना चाहिए। इसलिए सिखाया गया कि पैसा देना हो तो पहले रसीद लो और बाद में पैसा दो। और जब पैसा लेना हो तो पहले पैसा लो, तब रसीद दो। अब यह जो व्यवहार है वह मनुष्यों के सम्बन्ध में असम्भव है। विसंगति स्पष्ट है। और सारी राजनीति इसी व्यवहारवाद पर खड़ी है। इसलिए वह सफल नहीं होती। अगर राजनीति सफल होती तो क्रान्ति की जरूरत ही नहीं होती।

वस्तुवादी

मार्क्स ने कहा था : 'आज विश्व जैसा है उसका अर्थ दार्शनिकों ने समझाया और वैज्ञानिकों ने उसका आविष्कार किया। अब सवाल है, इसे बदलें कैसे ?' विश्व को बदलनेवालों में पहला है राजनीतिज्ञ। वह तो असफल हुआ। रहा वस्तुवादी, इसके मन में कोई कल्पना नहीं, कोई सिद्धान्त नहीं है। वह वस्तु को देखता है, वस्तु जैसी है वैसी देखने की कोशिश करता है। यह है वस्तुनिष्ठा। और ये वस्तुनिष्ठ विज्ञानवादी कहलाते हैं। विज्ञान हमेशा वस्तुनिष्ठ होता है। कल्पनावादी कहता था, वस्तु अपने में कुछ नहीं है। हमारी कल्पना उसे बनाती है। विज्ञान के साथ वस्तुनिष्ठा आयी और उसके साथ-साथ बुद्धिवाद आया। बुद्धिवाद क्या है ? वस्तु को देखो। तो अब विज्ञान के कारण दन्तकथाओं और कल्पनाओं की जगह 'तथ्य' आया, और श्रद्धा की जगह बुद्धि आयी। मानने की जगह जानना आया। यह वस्तुनिष्ठा आयी विज्ञान के साथ जो हमारे काम की है, क्योंकि इसके साथ तटस्थता आती है। लेकिन बुद्धि का भी एक वाद बन गया।

सिद्धान्तवादी

अमेरिकन क्रान्ति का हायप्रीस्ट टामस पेन कहता है, "दुनिया में मैं मानता हूँ (आइ बिलिव), इस वाक्य ने बहुत अधिक अनर्थ किया है। 'मैं मानता हूँ' पर ही धर्म और तत्त्वज्ञान खड़े हैं और इसीलिए धर्म तटस्थ और निष्पक्ष नहीं रह सके।" विज्ञान तटस्थ रहा। लेकिन इसने क्या किया ? वस्तुनिष्ठा में से कुछ अनुमान निकाले और वैज्ञानिकों ने फिर अपने-अपने सिद्धान्त बनाये। तो एक तरफ धर्म-शास्त्रज्ञों के सिद्धान्त हुए और दूसरी तरफ वैज्ञानिकों के सिद्धान्त। विज्ञान ने लड़ाई के हथियार दिये और इनका उपयोग सिद्धान्त और धर्म के लिए हुआ। विज्ञान वास्तव में तटस्थ है, लेकिन इनका उपयोग सिद्धान्त और धर्म के लिए हुआ। हम क्या चाहते हैं, विज्ञान का ऐसा उपयोग हो जिससे वह मानवीय संहार का साधन न बने। और सिद्धान्त के नाम पर उसका उपयोग न हो।

जीवन की एकता

अब यह जीवन क्या है ? जीवन को देखो। अब जीवन को सिर्फ देखना है, और देखने से मतलब खोलना है, उघाड़ना है। उसके अर्थ को मत खोलो। जीवन का स्वरूप क्या है ? जीवन 'युनिटी' है, एकता है। अनुभव से देखते हैं हम। एक माँ अपने बेटे को पीट रही है। वह अपरिचित है, फिर भी आपको दर्द होता है। क्यों ? संवेदना के कारण। अनुभव न हो तो संवेदना नहीं, वेदना नहीं। जीवन की एकता कोई आदर्श नहीं है। जीवन का स्वीकार है, जीवन को समझना है ज्यों का त्यों। सिद्धान्त और आदर्श को जीवन से अलग करना है। जीवन किस वस्तु का बना है ? जीवन बना हुआ है सम्बन्धों का—मनुष्य का मनुष्य के साथ सम्बन्ध, मनुष्य का अन्य जीव से सम्बन्ध, मनुष्य का सृष्टि के साथ सम्बन्ध। सूत्र क्या हुआ ? इस सम्बन्ध में जितनी एकता होगी, उतनी जीवन में समृद्धि होगी, एकता होगी। जीवन की एकता ही जीवन की सम्पन्नता है। तीनों की एकता का आविष्कार इनके सम्बन्ध में से होता है। एक-दूसरे के नजदीक आने का नाम ही प्रगति है। मनुष्य मनुष्य की तरफ बढ़ रहा है। सारे मनुष्य मिलकर अन्य जीवधारियों की तरफ बढ़ रहे हैं और ये सब सृष्टि की ओर बढ़ रहे हैं। यह सौहार्द है। सौहार्द जीवन का द्रव्य है। इसकी तरफ बढ़ना है। यह शान्ति है। 'पैसिफिस्ट' की शान्ति शान्ति नहीं है, पुलिस की शान्ति शान्ति नहीं है, युद्ध के मुकाबिले में खड़ी है वह शान्ति नहीं है। शान्ति वह शान्ति है, जो किसी के मुकाबिले खड़ी नहीं है। इसकी तरफ आगे बढ़ने का नाम प्रगति है। यह शान्ति क्रान्ति का साधन है। यह शान्ति संयोजन का प्रयोजन है। और यही शान्ति गांधी के प्रयोगों का ध्रुवतारा है।

(अ० भा० शान्ति-सेना शिविर, वाराणसी में दिये गये भाषण का पहला भाग, १४-१२-'६८)

महिला लोकयात्रा-टोली

हिसार। स्त्री-शक्ति का जागरण, भावनात्मक एकता एवं विद्या-प्रसार के महान उद्देश्य को लेकर २,००० मील पैदल चलने के बाद इस लोकयात्रा-टोली ने २० अक्तूबर '६८ को हरियाणा में प्रवेश किया। गुड़गावाँ और महेन्द्रगढ़ जिलों की पदयात्रा पूरी करके अब यह टोली गत २६ दिसम्बर से जिला हिसार में घूम रही है। लोकयात्रा-टोली का पता होगा : (१) जिला सर्वोदय भूदान-मण्डल 'सर्वोदय-भवन', हिसार। (२) खादी भंडार, गली नाइयाँवाली, भिवानी, जिला-हिसार। (३) खादी-भंडार, हाँसी, जिला-हिसार।

विनोबाजी का कार्यक्रम

५ से ११ जनवरी तक : राजगृह

निवास : निरीक्षण-भवन में

पत्र-व्यवहार का पता :

द्वारा : बिहार खादी-ग्रामोद्योग संघ, खादी-भंडार, राजगृह, जिला-पटना

www.vinoba.in

भारतीय युवकों की बेचैनी

पिछले २० वर्षों के दौरान शिक्षा प्राप्त करनेवाले युवकों की तादाद में भारी बढ़ोतरी हुई है। विश्वविद्यालयों की संख्या २० से बढ़कर ७० हो गयी है, जिसमें वे ६ विश्वविद्यालय अभी शामिल नहीं हैं, जो जल्दी ही विश्वविद्यालय का स्तर प्राप्त करनेवाले हैं। इन विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध कालेजों की संख्या २६०० तथा छात्रों की संख्या लगभग २० लाख है। इनमें से प्रतिवर्ष लगभग १ लाख छात्र स्नातक बनकर बाहर आते हैं।

शिक्षित होने की आकांक्षा और जागतिक सन्दर्भ

पिछले २० वर्षों के दौरान छात्रों की तादाद में भारी वृद्धि हुई है, इतनी ही खास बात नहीं है। इससे भी ज्यादा खास बात यह हुई है कि जिस सामाजिक परिवेश के छात्र विश्वविद्यालयों में दाखिल हुआ करते थे, वह अब बिलकुल दूसरा हो चुका है। विश्वविद्यालयों में पहले ऐसे परिवारों से छात्र आते थे जिनके लोग साक्षर, सम्पन्न, और विद्वत्ता के प्रति सम्मान का भाव रखते थे। अब विश्वविद्यालयों में जो छात्र अध्ययन के लिए पहुँच रहे हैं, वे समाज के हर तबके से आये हैं। चूंकि शिक्षा आज ऊँची प्रतिष्ठावाली नौकरियाँ पाने और राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने का एक जरूरी साधन है और शिक्षित होना इज्जत और समझदारी का लक्षण माना जाता है, इसलिए चाहे शहरी क्षेत्र हो या ग्रामीण, हर क्षेत्र की जनता में अपने बच्चों को ऊँची शिक्षा दिलाने की आकांक्षा जग गयी है। और हर क्षेत्र की शिक्षित होने की आकांक्षा ने धीरे-धीरे एक राजनैतिक माँग का रूप ले लिया है। विश्वविद्यालय की शिक्षा प्राप्त कर लेने पर हरिजन, कुम्हार, नाई या धोबी युवकों के साथ उसी प्रकार का व्यवहार नहीं किया जा सकता, जैसा उनकी जाति के अन्य निरक्षर लोगों के साथ होता आया है। शादी-विवाह के क्षेत्र में भी शिक्षित वर को ही अच्छी दुल्हन मिलती है। इन्हीं सब कारणों से हर क्षेत्र के लोग चाहने लगे हैं कि उनके बच्चों के लिए ऊँची-से-ऊँची शिक्षा हासिल करने की सुविधा उपलब्ध हो।

शिक्षा की इस बढ़ती हुई माँग की पूर्ति के लिए विभिन्न जातीय संगठनों को शिक्षण-संस्थाओं के क्षेत्र में प्रवेश करने की प्रेरणा मिली। जिन जातियों के लोग अधिक संख्या में हैं या जिनकी संख्या बड़ी जाति के लोगों से कुछ कम है, उन्होंने अपनी-अपनी जातियों के लड़कों को शिक्षा की सुविधा उपलब्ध कराने के लिए शिक्षण-संस्थाओं का गठन किया। इस प्रकार के प्रयत्न से जो महाविद्यालय खुले उनकी इमारतें घटिया दर्जे की हैं, और विद्यालय के लिए आवश्यक उपकरण और साज-सामान भी प्रायः अपर्याप्त या घटिया किस्म के हैं। महाविद्यालयों के प्राचार्य, शिक्षक और अन्य कर्मचारियों के चयन में भी अपनी जाति के लोगों को प्रधानता देने की कोशिश की गयी। चुनाव करते समय उम्मीदवारों की योग्यता, चारित्र्य और अनुभव को प्रधानता देने के बदले, उनके जातीय और सामाजिक प्रभाव का विचार किया गया। ऐसे महाविद्यालयों में छात्रों को मुख्य रूप से इसलिए भर्ती किया जाता है कि उनके कारण विद्यालयों को फीस की खासी अच्छी आय होती है। छात्रों की संख्या जितनी ही अधिक होती है, विद्यालय की आय उतनी ही बढ़ती है। कई महाविद्यालयों में प्रवेश लेते समय छात्रों से भारी प्रवेश-शुल्क की रकम ली जाती है।

अधकचरी पढ़ाई और नयी सांस्कृतिक परिस्थिति

शिक्षण-सम्बन्धी अपर्याप्त सुविधाओं, अयोग्य अध्यापकों और अधकचरी पढ़ाई से जैसे-तैसे परीक्षा पास करनेवाले छात्रों की भारी तादाद एक ऐसी सांस्कृतिक परिस्थिति का निर्माण करती है, जिसके अन्तर्गत छात्र-बेचैनी पनपती और पुष्ट होती है। छात्र का एक ही लक्ष्य रहता है—अच्छे नम्बर हासिल करके इम्तहान पास करना। शिक्षक विद्यालयों में अच्छी तरह पढ़ाने के बदले 'प्राइवेट ट्यूशन' करना पसन्द करते हैं। परीक्षा में आनेवाले प्रश्नों के उत्तर छात्रों को बताने और परीक्षक पर प्रभाव डलवाकर छात्र को अधिक अच्छे नम्बर दिलाने में शिक्षकों की अधिक दिलचस्पी रहती है। ऐसा शिक्षक स्वयं अपनी पढ़ाने की योग्यता बढ़ाने के बदले अधिक आमदनी प्राप्त करने और अपना असर बढ़ाने की राजनीति में अधिक समय खर्च करता है। अपनी सफलता के लिए वह अपनी जाति, सम्प्रदाय या क्षेत्रीय सम्बन्धों का भरपूर इस्तेमाल करता है। वह अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रभावशाली और बदमाश स्वभाव के छात्रों का भी उपयोग करता है।

विश्वविद्यालय की कक्षाओं में प्रवेश पाना एक बात है और अच्छे अंकों में परीक्षोत्तीर्ण होना दूसरी बात है। जो छात्र भूमिहीन परिवारों, छोटी कारीगरी से जीविकोपार्जन करनेवाले लोगों या समाज की सेवा करनेवाले समुदाय में पल-पुसकर विश्वविद्यालयों में दाखिल होते हैं, उन्हें पढ़ाई के दौरान अपनी बुद्धि पर भारी दबाव झेलना पड़ता है। ऐसे अधिकांश छात्र अपने परिवारों के प्रथम साक्षर सदस्य हुआ करते हैं, और चूंकि कालेज या विश्वविद्यालय प्रायः नगरों में ही अवस्थित होते हैं; इसलिए ऐसे छात्र शहरी जीवन का प्रथम परिचय विश्वविद्यालय-छात्र के रूप में ही प्राप्त करते हैं। समाजशास्त्रीय शब्दावली में कहें तो कहना चाहिए कि उन छात्रों को अपनी जिन्दगी में दो-दो क्रान्तियों का साक्षात्कार करना पड़ता है—एक शिक्षा की क्रान्ति, और दो, शहरीकरण की क्रान्ति। इस दुहरी क्रान्ति की प्रक्रिया में से गुजरने के कारण ऐसे छात्रों को छात्र-जीवन में जिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है, वे मुख्य रूप से दो हैं :

पहली समस्या छात्र की घरेलू संस्कृति और विश्वविद्यालय की संस्कृति के भारी अन्तर के कारण उपस्थित होती है। देहात के वातावरण में पला हुआ छात्र ऐसी परम्परा के समाज में से आता है, जहाँ परिवार में पुरुष और स्त्री अलग-अलग ढंग की दिनचर्या बिताते हैं, और लोगों का विवाह बहुत कम उम्र में ही हो जाता है। विश्वविद्यालय का

www.vinoba.in

सामाजिक वातावरण उससे बिलकुल भिन्न होता है, जहाँ २४-२५ वर्ष की अवस्था तक के अविवाहित छात्र और छात्राएँ विद्या-अध्ययन करती हैं। गाँव के लोग अक्सर ऐसी धारणा रखते हैं कि जो सयानी लड़कियाँ अविवाहित रहती हैं, वे अनैतिक जीवन जीती हैं। किसी लक्ष्य की उपलब्धि के लिए अविवाहित जीवन जीने की भी आवश्यकता हो सकती है, इस बात पर देहात के लोगों को आसानी से विश्वास नहीं हो पाता। ऐसे सामाजिक परिवेश में आनेवाले छात्र को विश्वविद्यालय में पहुँचकर वयस्क लड़कियों की बगल में बैठकर प्राध्यापक का लेक्चर सुनने, सभाओं में शरीक होने या अभिनय तथा खेल-कूद में भागीदार बनने पर एक नया ही अनुभव मिलता है। उनके साथ होटल में बैठकर चाय और काफी पीते हुए गपशप करने में भी एक नया तजुर्बा हासिल होता है। ऐसे सब अनुभव छात्र से एक नये सामाजिक अनुकूलन की माँग करते हैं। क्या इन माँगों का छात्रों की अनुशासनहीनता के साथ कोई सम्बन्ध है? यह एक ऐसा पहलू है, जिसकी वैज्ञानिक छानबीन होनी चाहिए।

ग्रामीण युवकों और नगरवासी युवकों के बीच की खाई

जहाँ तक ग्रामीण युवकों की बात है, यह आमतौर से माना जा सकता है कि उनके और नगरवासी छात्रों के बीच एक बड़ी खाई रहती ही है। गाँव के जिन लोगों के लड़के विश्वविद्यालयों में पढ़ते हैं, वे गौरव का अनुभव करते हैं। स्वभावतः वे उम्मीद करते हैं कि उनके पुत्र अच्छी तनख्वाह और इज्जतवाली नौकरी के हकदार होंगे।

गाँव से आनेवाले छात्रों की दूसरी समस्या पढ़ाई के विषयों के कारण प्रस्तुत होती है। जो विषय छात्र हाईस्कूल में पढ़ चुका होता है, वे विश्वविद्यालय में पहुँचने पर बदल देने पड़ते हैं और प्रायः ऐसे विषय लेने पड़ते हैं, जो उनके लिए नये होते हैं। इसके विपरीत जो छात्र नगर के विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करके कालेज या विश्वविद्यालय में दाखिल होते हैं, वे अपने बचपन से ही प्रतिस्पर्द्धात्मक शिक्षण-पद्धति और शहरी संस्कृति के अभ्यासी बने रहते हैं। देहाती और शहरी छात्रों की प्रतियोगिता की मिसाल 'रेस' के घोड़े और ताँगे में चलनेवाले घोड़े की घुड़दौड़ की मिसाल से बहुत मिलती-जुलती है। विश्वविद्यालय की ऊँची कक्षाओं में जाकर यह मिसाल और भी मौजूँ हो जाती है, जब कि अंग्रेजी भाषा की अच्छी जानकारी प्रत्येक विषय की पढ़ाई का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हिस्सा बन जाती है। इस अन्तर के कारण देहात से आनेवाले छात्रों को शहरी छात्रों के मुकाबले ज्यादा कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती हैं।

आज के भारत में 'छात्र-शक्ति' रोजमर्रा की जिन्दगी की एक असलियत बन गयी है और यह हालत अब एक अर्से तक कायम रहनेवाली है। इसके साथ ही साथ कुछेक और भी असलियतें हैं। शिक्षण-संस्थाओं के अहाते के भीतर चाहे जो हो, पुलिस को अहाते के भीतर न रखा जाय।

हर हालत में पुलिस-प्रवेश निषिद्ध हो

आज पावित्र्य की धारणा को मन्दिर तक सीमित रखने के बदले उसे विद्यालय तक लागू करने की आवश्यकता है। प्राचार्यों और कुलपतियों का छात्रों द्वारा बार-बार घेराव हो तो भी उन्हें विद्यालय में पुलिस नहीं बुलानी चाहिए, न शिकायत करनी चाहिए। क्योंकि जैसे ही कुलपति या प्राचार्य द्वारा पुलिस बुलायी जाती है, छात्र-नेताओं, राजनीतिज्ञों, समाचार-पत्रों और शिक्षकों द्वारा पुलिस बुलाने के निमित्त कुलपति अथवा प्राचार्य की फौरन निन्दा शुरू हो जाती है।

यहाँ यह कहना अनुचित न होगा कि प्रायः जब कभी पुलिस को शिक्षण-संस्थाओं के अहाते में बुलाया जाता है तो स्थिति सुधरने के बदले और ज्यादा बिगड़ जाती है।

विश्वविद्यालयों में शीघ्र ही शान्ति और सुव्यवस्था का वातावरण बनना चाहिए, अन्यथा शिक्षा के क्षेत्र में अराजकता की स्थिति पैदा होगी। विश्वविद्यालयों में अध्यापन करनेवाले अनेक वरिष्ठ प्राध्यापक अब ऐसे क्षेत्र में कार्य-संलग्न होना चाहते हैं, जहाँ छात्रों से सम्पर्क रखने की जरूरत ही न हो। कुलपति का पद स्वीकार करने के लिए आजकल अच्छे लोग बड़ी मुश्किल से तैयार हो पाते हैं। सम्प्रति कुलपति का पद आज सबसे अधिक त्रासदायक हो गया है।

राजनीतिक दलों की घुसपैठ उपद्रव की बुनियाद

विश्वविद्यालय के अहाते में राजनीतिक दलों की घुसपैठ का दुहरा परिणाम होता है। एक तो यह कि विश्वविद्यालय की प्रत्येक समस्या राजनीतिक समस्या में रूपांतरित हो जाती है और दूसरा यह कि कोई भी राजनीतिक समस्या विश्वविद्यालय के अन्दर हिंसा और हड़ताल का स्रोत बन जाती है। हरेक राजनीतिक दल की एक छात्र-शाखा है और यह भी जानकारी मिली है कि कुछ विश्वविद्यालयों के छात्र अपने सम्बन्धित दलों से नियमित रूप से आर्थिक सहायता प्राप्त करते हैं। विश्वविद्यालयों के छात्रों का इस प्रकार का राजनीतिकरण ऐसी स्थिति पैदा कर चुका है कि विश्वविद्यालयों के प्रांगण में आसानी से शान्ति-स्थापन नहीं हो पायेगा।

इसी बीच सार्वजनिक जीवन के खास-खास व्यक्ति बराबर यह कह रहे हैं कि राजनैतिक दलों को छात्र-राजनीति से अलग रहना चाहिए और वरिष्ठ विद्वानों को विश्वविद्यालय की समस्याओं पर शुद्ध शैक्षिक दृष्टिकोण से विचार करना चाहिए। इसका मतलब है समस्या को उसके सामाजिक परिवेश से अलग करना। वामपंथी दल चाहते हैं कि विश्वविद्यालयों का क्षेत्र उनके लिए खुला रहे।

सच्चे लोकतंत्र में विभिन्न राजनीतिक दलों का छात्रों में प्रवेश रोकने का कोई उपाय नहीं है। आज तो ज्यादा-से-ज्यादा इतना ही सम्भव है कि छात्रों को जो भी शिकायतें हैं, उनके बारे में राजनीतिक दलों के लोगों में पूरी जानकारी के साथ वादविवाद हो सके। इतना हो पाना भी आज की परिस्थिति में बड़ी दूर की बात है, क्योंकि छात्रों की शिकायतों को किस ढंग से दूर किया जाय, इसके बारे में राजनैतिक दल आसानी से एक राय नहीं हो पायेंगे।

जो परिस्थिति है उसमें छात्रों में बेचैनी का होना स्वाभाविक ही है। अब समय आ गया है, जब कि सामान्य जनता को हमारी शैक्षिक संस्थाओं की असली हालत की जानकारी मालूम होनी चाहिए। इसके कारण→

www.vinoba.in

जर्मनी

जहाँ के विद्यार्थी संपन्नता की दौड़ से मुँह मोड़ रहे हैं !

जर्मनी यूरोप में अमेरिका का नमूना है। उद्योगवाद के इस विशाल फ्रेम में आदमी कोलों की तरह जहाँ-तहाँ ठुका हुआ है। मशीनवाद की इस ऊँची चोटी पर चढ़कर देखता हूँ तो आदमी जहाँ-तहाँ चींटियों की तरह चलता नजर आता है। आदमी का इतना छोटा कद शायद ही इतिहास में कभी रहा हो। स्वतंत्रता की सुहावनी बोली बोलकर उसे आकांक्षाओं, परिस्थितियों और अनावश्यक आवश्यकताओं का ऐसा दास बना दिया गया है कि इस 'नयी दास-प्रथा' का इतिहास लिखनेवाला शायद रो पड़ेगा। यूरोप के पत्रकार भारत की 'गरीबी' के चित्र छापते हैं. 'अंडर डेवलप्ड' भारत पर लम्बे निबन्ध लिखते हैं, पर यूरोप की इस 'अमीरी' के चित्र हमारी 'गरीबी' के चित्रों से कम भयानक नहीं हैं ! मैं देख रहा हूँ इस 'ओवर डेवलप्ड' जर्मनी को, जहाँ आदमी के अलावा सब कुछ शानदार है। आदमी की परवाह है भी किसे ? और हो भी क्यों ?

मैं पहली बार सन् १९६३ में जर्मनी आया था। सन् १९६३ की जर्मनी से सन् १९६८ की जर्मनी में कई दृष्टियों से काफी अन्तर है। सन् '६३ की जर्मनी एकजुट होकर संपन्नता की ओर दौड़ रही थी, पर सन् '६८ की जर्मनी संपन्नता के लिए दौड़नेवालों में फूट के दर्शन कर रही है ! सन् '६८ की जर्मनी में बूढ़े तेजी से दौड़ रहे हैं, पर जवान हाँफ रहे हैं। बुद्धिजीवी और विद्यार्थी संपन्नता की इस दौड़ में भाग लेने से इनकार कर रहे हैं। सन् '६३ की जर्मनी में सादे और सरल जीवन की बातों के लिए कोई दिलचस्पी नहीं थी, पर सन् '६८ की जर्मनी में मशीन और मनुष्य के सम्बन्धों पर, संपन्न जीवन और सरल जीवन के गुणावगुणों पर बहस चल रही है।

मैंने जर्मनी की यात्रा का आरम्भ बोन से किया। राजधानी को नमस्कार करने और कुछ पुराने मित्रों से मुलाकात करने के अलावा बोन में मेरी ज्यादा दिलचस्पी नहीं थी। बोन वैसे काफी 'डल' शहर है। औपचारिकता से भरा वातावरण, सरकारी बाबुओं और दफ्तरों का निर्जीव परिवेश तथा सूखी मुस्कानों का स्वागत। पद, पैसा और परिचय के बिना आदमी निरा भोंदू है यहाँ। अपने मेजबान श्री स्मिकलर के साथ ह्राइन नदी के किनारे घूम-घामकर दो दिन काटे और बोन से विदा हुआ।

स्टुटगार्ट में सचमुच जीवन के दर्शन होते हैं। 'एक्स्ट्रा पार्लियामेंटरी अपोजिशन' के जीवंत कार्यकर्ताओं की चर्चाओं में कल की जर्मनी के प्रति आशा बँधती है। 'ए० पी० ओ०' के नाम से मशहूर यह आन्दोलन शायद इस समय जर्मनी का सबसे विवादास्पद आंदोलन है। विभिन्न शांतिवादी संस्थाएँ, विद्यार्थी संघ और सामाजिक क्रान्ति चाहनेवाले व्यक्ति, जिनके विचारों का पार्लियामेंट में कोई प्रतिनिधित्व नहीं है और जो पार्लियामेंटरी शासन-पद्धति को निकम्मी मानते हैं, 'ए० पी० ओ०' आन्दोलन के अंग हैं। "पार्लियामेंट क्रान्ति नहीं ला सकती और हम क्रान्ति चाहते हैं।" एलफ्रेड क्नोस ने कहा : "हम चाहते हैं इस सर्वसत्ता-संपन्न भीमकाय पार्लियामेंट की समाप्ति और श्रमिकों, बुद्धिजीवियों एवं नागरिकों की लघुकाय, क्षेत्रीय पार्लियामेंटों का निर्माण। औपचारिक एवं निर्जीव प्रजातंत्र के स्थान पर 'पार्टीसिपेट्री' प्रजातंत्र हमारा उद्देश्य है।" एलफ्रेड क्नोस भारत आ चुके हैं, सर्वोदय-आन्दोलन का निकट से उन्होंने अध्ययन किया है। और दामोदरदास मूंदड़ा के काम के साथ उनका न केवल संपर्क है, बल्कि सहयोग भी है। श्री क्नोस यह परिवर्तन और क्रान्ति अहिंसात्मक उपायों से लाना चाहते हैं, जब कि अनेक विद्यार्थी एवं युवकों का अहिंसा पर कोई भरोसा नहीं है। इसलिए श्री क्नोस काफी कठिनाई के साथ अपना रास्ता तैयार कर रहे हैं।

मैं स्टुटगार्ट में श्री वोल्फगांग किलगुस के साथ ठहरा था। उनका कमरा मार्क्स से लेकर माओ तक और गांधी से लेकर मार्टिन लूथर किंग तक की पुस्तकों से भरा था। किलगुस ने कहा : "हमें कोई भी विचारक रेडीमेड सत्य नहीं दे सकता। हर पीढ़ी को अपने सत्य की खोज स्वयं करनी होगी। ये विचारक हमारी खोज में सहायक होते हैं।" किलगुस के साथ मैं विद्यार्थियों द्वारा स्प्रिंगर-प्रेस के विरोध में आयोजित एक प्रदर्शन में भाग लेने गया। स्प्रिंगर महोदय पश्चिमी जर्मनी और पश्चिमी बर्लिन के ५० से ७० प्रतिशत अखबारों के मालिक हैं। प्रगति, परिवर्तन एवं क्रान्ति के घोर विरोधी होने के साथ-साथ श्री स्प्रिंगर द्वारा प्रकाशित अखबारों में समूचे विद्यार्थी समाज के खिलाफ एक विषैला 'टोन' रहता है। जर्मनी के १५० से अधिक बुद्धिजीवियों, लेखकों, कवियों

→आज जो हालत है, उससे सिर्फ इतना ही नहीं हुआ है कि छात्रों और शिक्षकों के स्तर में गिरावट आयी है, और हमारी शिक्षा-प्रणाली देश की समस्याओं का सामना करने के लायक नहीं रह गयी है, बल्कि अब इस बात का खतरा है कि अगर छात्र-असंतोष इसी तरह बढ़ता गया तो हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था ही नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगी।

देश की आम जनता और दलों के नेता इस खतरे की गंभीरता को समझें, यह आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

परिस्थिति की माँग है कि हमारे राजनैतिक नेता और शैक्षिक क्षेत्र के प्रतिष्ठित व्यक्ति शिक्षा-सम्बन्धी तात्कालिक और दूरगामी निर्णयों तथा नीतियों के बारे में विचार-विमर्श करतेरहें। राष्ट्रीय जीवन की अन्य समस्याओं की तरह शिक्षा के मामले में भी कुछ ऐसे स्वयंप्रेरित व्यक्तियों की आवश्यकता है, जो शिक्षा को वर्तमान और भविष्य की समस्याओं पर लगातार चिन्तन करते रहें।

[श्री एम० एन० श्रीनिवास के 'टाइम्स आफ इंडिया' : १२ नवम्बर, '६८ के अंक में प्रकाशित मूल अंग्रेजी लेख से साभार]

और साहित्यकारों ने सामूहिक रूप से स्प्रिंगर-अखबारों में लिखना बन्द करके इस अखबारी साम्राज्य का बहिष्कार किया है। पिछले दिनों विद्यार्थियों ने स्प्रिंगर-अखबारों का वितरण रोकने के कई आन्दोलन, प्रदर्शन आदि किये। भारतीय स्वातंत्र्य-आन्दोलन में विदेशी कपड़े का जिस तरह बहिष्कार किया गया था, कुछ उसी तरह का नमूना स्प्रिंगर-प्रेस के बहिष्कार में मुझे देखने को मिला।

www.vinoba.in

विद्या की नगरी के रूप में म्युनिख का जर्मनी में वही स्थान है, जो स्थान भारत में वाराणसी का है। वनों, उपत्यकाओं और जलाशयों की गोद में बसी हुई इस विद्या-नगरी का असली जर्मन नाम 'मुंचेन' है, पर अंग्रेजों ने अपनी सुविधा के लिए मुंचेन को बिगाड़कर उसी तरह 'म्युनिख' बना दिया, जिस तरह वाराणसी को 'बेनारस'। मुंचेन के छात्रों, युवकों और शान्तिवादियों के साथ दो दिन रहकर वापस फ्रांकफुर्ट आया। जर्मन समाजवादी विद्यार्थी संघ का प्रधान कार्यालय फ्रांकफुर्ट में है। यह संस्था पूरे यूरोप में एस० डी० एस० के नाम से जानी जाती है। शुरू में एस० डी० एस० का संचालन जर्मन समाजवादी पार्टी (एस० पी० डी०) द्वारा होता था। पर जब से एस० पी० डी० ने क्रिश्चियन पार्टी की संयुक्त सरकार में प्रवेश किया है, एस० डी० एस० के क्रान्तिकारी विद्यार्थियों का वह विश्वास खो चुकी है। इस समय एस० डी० एस० एक स्वतंत्र विद्यार्थी संघ है और विश्वविद्यालयों की पुनर्रचना, शिक्षा-पद्धति में परिवर्तन और संपूर्ण सामाजिक क्रान्ति के उद्देश्यों के साथ ए० पी० ओ० आन्दोलन में यह संघ सारथी की भूमिका अदा कर रहा है।

अन्तरराष्ट्रीय युद्ध-विरोधी सभा (डब्ल्यू० आर० आई०, जिसका प्रधान कार्यालय लन्दन में है और देवीप्रसाद जिसके मंत्री हैं) की जर्मन शाखा का राष्ट्रीय सम्मेलन ब्रेमिन में हो रहा था। सम्मेलन में भाग लेने के लिए मुझे निमंत्रित किया गया था। इसलिए फ्रांकफुर्ट से मैं ब्रेमिन पहुँचा। देशभर के प्रमुख शान्तिवादियों के इस द्वि-दिवसीय सम्मेलन का स्वरूप सर्व सेवा संघ के अधिवेशन की तरह का था। फर्क इतना था कि हमारे संघ-अधिवेशन या सम्मेलन में नेताओं के लम्बे-लम्बे भाषण होते हैं, जब कि यहाँ प्रत्यक्ष कार्यक्रम से सम्बन्धित कठिनाइयों और कार्यक्रमों की नीतियों पर चर्चा हो रही थी। कोई भी वक्ता ५-७ मिनिट से ज्यादा नहीं बोलता था। प्रायः विषय से सम्बन्धित किसी मुद्दे या पहलू पर ही लोग अपनी राय रखते थे। मैंने भारतीय शान्ति-आन्दोलन, विशेष रूप से ग्रामदान-तूफान, प्रान्तदान आदि की जानकारी दी। अन्त में अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, मंत्री और कार्यकारिणी का चुनाव हुआ। अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और मंत्री, तीनों की उम्र ३५ वर्ष से कम है। २० हजार से अधिक सदस्योंवाली इस संस्था का नेतृत्व पूरी तरह युवकों के हाथ में है, यह देखकर मुझे प्रसन्नता हुई।

अन्तरराष्ट्रीय युद्ध-विरोधी सभा की इस जर्मन शाखा के नये उपाध्यक्ष थियोडोर एबर्ट मेरे पुराने मित्र थे। जब मैं उनको बधाई देने पहुँचा, तो उन्होंने मुझे बर्लिन आने का निमंत्रण दिया। थियोडोर, बर्लिन विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हैं। उन्होंने ५ साल के निरन्तर अध्ययन, अध्यवसाय और अन्वेषण के बाद 'अहिंसा के शास्त्र' की रचना की है। लगभग एक हजार पृष्ठों का यह 'शास्त्र' जर्मन भाषा में अपने ढंग की अकेली पुस्तक मानी जाती है। उन्होंने मेरे लिए बर्लिन विश्वविद्यालय, और 'क्रिटिकल यूनिवर्सिटी' में ग्रामदान के सम्बन्ध में दो व्याख्यानों का आयोजन किया। 'क्रिटिकल यूनिवर्सिटी' एक तरह से नयी तालीम का यूरोपीय संस्करण है। इसकी स्थापना २ नवम्बर, १९६७ में बर्लिन विश्वविद्यालय के छात्रों और अध्यापकों द्वारा संयुक्त रूप से की गयी थी। ५,५५७ छात्रों तथा अध्यापकों के समर्थन से स्थापित यह विश्वविद्यालय परीक्षा और किताबों से मुक्त शिक्षा का एक प्रयोग है। टेक्नोलोजिकल शिक्षा से दमित समाज में इस प्रयोग को एक नयी क्रान्ति ही माना जायेगा। इसी तरह से लन्दन में 'एंटी यूनिवर्सिटी' और न्यूयार्क में 'फ्री यूनिवर्सिटी' की स्थापना हुई है। इन साहसिक क्रान्तिकारी और विधायक प्रयोगों के बाद यह कहना गलत होगा कि जर्मनी के विद्यार्थी मात्र विध्वंस चाहते हैं।

—सतीशकुमार

विकास की बुनियादी इकाई : गाँव

बलिया, २५ दिसम्बर '६८। जिलादान के बाद जिले के विकास-कार्यक्रम पर विचार करने के लिए आयोजित जिला-स्तरीय गोष्ठी में श्री जयप्रकाश नारायण ने कहा कि स्वराज्य के बाद के अनुभव से हम इस नतीजे पर पहुँच चुके हैं कि ऊपर-ऊपर से बनायी और चलायी गयी एकांगी योजनाओं की इस देश में कोई सार्थकता नहीं रह गयी है, इसलिए अब यह अनिवार्य हो गया है कि विकास की समग्र योजना गाँव को प्राथमिक इकाई मानकर गाँव के लोगों द्वारा बनायी जाय, और गाँव की शक्ति से उसका क्रियान्वयन शुरू हो। ग्रामदान उसका आधार प्रस्तुत करता है। इसलिए हमें यह सोचना चाहिए कि जिलादान के बाद जिले में किस तरह इस दिशा में विकास का काम चले।

आपने कहा कि ग्रामदान की नयी मान्यताओं के आधार पर गाँव-गाँव में ग्रामसभाओं का यथाशीघ्र संगठन किया जाय और उसे प्रखण्ड तथा जिला-स्तर तक विकसित किया जाय। सरकार द्वारा घोषित 'हरी क्रान्ति' (ग्रीन रिवोल्यूशन) की चर्चा करते हुए आपने कहा कि उत्पादन के सारे साधन समाज की सम्पत्ति हैं। उनका लाभ देश के सब लोगों को मिलना चाहिए। अगर ऐसा नहीं हुआ और कुछ सम्पन्न लोग ही विकास के उन्नत साधनों का लाभ उठाते रहे तो उस विकास से वर्ग-संघर्ष की नींव पड़ेगी। इसलिए यह आवश्यक है कि विकास के साधनों का लाभ निम्नतम स्तर के लोगों को मिले।

गोष्ठी में भाग लेने के लिए जिले भर के प्रखण्ड विकास-अधिकारी, प्रखण्ड-प्रमुख तथा अन्य नागरिक उपस्थित थे। इस गोष्ठी में प्रमुख जिला-अधिकारियों सहित जिलाधीश एवं नियोजन-अधिकारी ने भी गोष्ठी में भाग लिया। जिला परिषद् के अध्यक्ष ने आगन्तुकों का स्वागत करते हुए सर्वप्रथम इस गोष्ठी का संदर्भ प्रस्तुत किया और जिला नियोजन-अधिकारी ने जिले में अब तक हुए विकास-कार्यों की जानकारी दी।●

उत्तर प्रदेशदान के संदर्भ में सन् १९६९ की शिविर-योजना

www.vinoba.in

जनवरी	१० से १२	शान्ति-सेना शिविर मेरठ
	१५ से १६	मुजफ्फरनगर, चरथावल, पुरकाजी
	१७ से १८	बुलन्दशहर
	२३ से २४	,,
फरवरी	२ से ३	,,
	८ से ९	,,
	१४ से १५	सहारनपुर, बक्सर, बहादुराबाद
फरवरी	२० से २१	मेरठ
मार्च	६ से ७	मेरठ
	१८ से १९	सहारनपुर
	२४ से २५	बुलन्दशहर
मई	१ से २	बुलन्दशहर
	७ से ८	मेरठ
	१३ से १४	मुजफ्फरनगर
	१९ से २०	बुलन्दशहर
जून	८ से ९	मेरठ
	१४ से १५	सहारनपुर
	२० से २१	बुलन्दशहर
	२६ से २७	,,
जुलाई	६ से ७	मुजफ्फरनगर
	१२ से १३	मेरठ
	१८ से १९	सहारनपुर
	२४ से २५	बुलन्दशहर
अगस्त	३ से ४	,,
	९ से १०	मेरठ
	१५ से १६	मुजफ्फरनगर
	२१ से २६	बुलन्दशहर
	२८ से २९	,,
सितम्बर	७ से ८	सहारनपुर
	१३ से १४	मेरठ
	२२ से २३	मुजफ्फरनगर, सहारनपुर
	२८ से २९	,,

सन् १९६९ गांधी जन्म-शताब्दी वर्ष है !

गांधीजी ने कहा था :

"मेरा सर्वोच्च सम्मान जो मेरे मित्र कर सकते हैं, वह यहा है कि मेरा वह कार्यक्रम वे अपने जीवन में उतारें, जिसके लिए मैं सदैव जिया हूँ या फिर यदि उन्हें उसमें विश्वास नहीं है, तो मुझे उससे विमुख होने के लिए विवश करें।"

मानव-समाज के सामने, आज के संघर्षपूर्ण एवं हिंसामय वातावरण से मुक्ति पाने के लिए, गांधी-मार्ग ही आशा का एकमात्र मार्ग रह गया है।

गांधीजी की दृष्टि में :

(१) दुनिया के सब धर्म एक जगह पहुँचने के अलग-अलग रास्ते हैं।

(२) जाति और प्रान्त की दोहरी दीवार टूटनी चाहिए।

(३) अछूत प्रथा हिन्दू समाज का सबसे बड़ा कलंक है।

(४) यदि किसी व्यक्ति के पास, जितना उसे मिलना चाहिए उससे अधिक हो तो वह उसका संरक्षक या ट्रस्टी है।

(५) किसान का जीवन ही सच्चा जीवन है।

(६) स्वराज्य का अर्थ है अपने को काबू में रखना जानना।

(७) प्रत्येक को सन्तुलित भोजन, रहने का मकान और दवा-दारू की काफी मदद मिल जानी चाहिए, यह है आर्थिक समानता का चित्र।

पूज्य बापू की जीवन-दृष्टि में अपनी दृष्टि विलीन कर गांधी-जन्म-शताब्दी सफलतापूर्वक मनाइए।

राष्ट्रीय-गांधी-जन्म शताब्दी-समिति की गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति, टुंकलिया भवन, कुन्दीगरों का भैरू, जयपुर–३ (राजस्थान) द्वारा प्रसारित।

www.vinoba.in

सिद्धेश्वरनाथ मोदी : संकल्पित जीवन

राजस्थान के सैंतीस वर्षीय कार्यकर्ता साथी सिद्धेश्वर मोदी का एक संकल्प है कि प्रतिदिन एक-न-एक ग्राहक अपने किसी भी सर्वोदय विचार-पत्र का बनाये बिना भोजन नहीं करेंगे। यह संकल्प जुलाई १९६२ से चल रहा है। गांधी-शत-संवत्सरी तक २००० ग्राहक बनाने का लक्ष्य था, जो उनके शब्दों में "गुरुजनों की कृपा और साथियों के सहयोग से सन् १९६९ से एक वर्ष पूर्व सितम्बर १९६८ में ही पूरा हो गया।"

शरीर-बल से कुछ कमजोर, लेकिन मनोबल से सबल सिद्धेश्वरजी ने बी० ए० तथा 'साहित्य रत्न' प्रथम भाग की परीक्षाएँ पास करने के बाद अ० भा० ग्रामोद्योग संघ, मगनवाड़ी, वर्धा से ग्रामोद्योग विभाग का अभ्यासक्रम विशेष योग्यता के साथ उत्तीर्ण किया। बाल-निकेतन, जोधपुर में बुनियादी शिक्षक का कार्य १९५१-'५२ में किया। '५३ में राजस्थान के उद्योग विभाग के अन्तर्गत ताड़-गुड़ 'इंस्ट्रक्टर' रहे तथा गांधी स्मारक निधि के अन्तर्गत १९५३ से १९५६ तक ग्रामसेवा का कार्य श्री सिद्धराज ढड्ढा के मार्गदर्शन में सर्वोदय केन्द्र खीमेल में रहकर किया। अब, पिछले कई वर्षों से खादी-ग्रामोद्योग कमीशन के अन्तर्गत सघन क्षेत्र योजना, ग्राम-इकाई एवं आजकल समग्र विकास-योजना खण्डों के कार्य को देख रहे हैं।

सन् १९६१ में हृदय-रोग के कारण बायें अंग में लकवा हो गया था, जिससे शारीरिक रूप से कठिन श्रम के योग्य नहीं रह गये। गुरुजनों की प्रेरणा से सत्साहित्य-प्रचार एवं पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा सर्वोदय-विचार को घर-घर पहुँचाने का पागलपन सिर पर सवार हुआ, तब से ही निरंतर पत्र-पत्रिकाओं के ग्राहक बनाने का अखण्ड प्रयत्न चल रहा है। प्रति वर्ष २००-३०० ग्राहक 'ग्रामराज' तथा 'भूदान-यज्ञ', 'स्वस्थ जीवन', 'ग्राम-भावना', 'नयी तालीम', 'भूदान तहरीक' जैसे विचार-पत्रों के बना लेते हैं। प्रति वर्ष साहित्य-बिक्री भी हजार-डेढ़ हजार से पाँच हजार रु० तक की कर चुके हैं।

सिद्धेश्वरजी की कामना है कि "प्रत्येक प्रान्त में खादी-कमीशन, खादी-बोर्ड अथवा अन्य खादी व रचनात्मक कार्य में लगे हुए कार्यकर्ता साथी कुछ दिन के लिए छोटे-बड़े संकल्प लेकर पत्रिकाओं के ग्राहक बनाने का प्रयत्न शुरू कर दें, तो देश के प्रत्येक ग्राम में हमारा विचार-पत्र अवश्य पहुँच जायेगा। आज तो ग्रामदान-आन्दोलन प्रदेशदान की मंजिल तक पहुँच रहा है। इस समय क्या हम प्रत्येक गाँव में एक-एक ग्राहक भी अपने विचार-पत्रों का नहीं बना सकते? क्यों न हम बाबा व जयप्रकाशजी एवं अन्य गुरुजनों को उनके जन्म-दिवसों पर अधिक-से-अधिक पत्रिका के ग्राहक बनाकर उन्हें भेंट करने की परम्परा शुरू करें? यदि सोचा जाय तो मेरी समझ में यह कोई बहुत बड़ा काम नहीं है। आवश्यकता है सिर्फ दृढ़ निश्चय की। सर्वोदय-विचार की देश और दुनिया में इतनी माँग बढ़ रही है कि पत्रिकाओं के ग्राहक बनने से कोई इन्कार नहीं करनेवाला है।"

—विशेष प्रतिनिधि

योग्य उम्मीदवार को वोट दें

देश में स्थाई और सुदृढ़ सरकार बनाने के लिए पक्षों का ख्याल छोड़ें

बलिया की विराट सार्वजनिक सभा में श्री जयप्रकाश नारायण का भाषण

बलिया, २५ दिसम्बर '६८। आज स्थानीय टाऊनहाल के मैदान में आयोजित एक विराट सार्वजनिक सभा में मध्यावधि चुनाव के विषय में भाषण देते हुए श्री जयप्रकाश नारायण ने कहा कि आज हर मतदाता के सामने यह उलझन विकट रूप में खड़ी है कि वोट किसे दें।

आपने कहा कि मैं वर्षों से दलगत राजनीति से अलग हूँ। लेकिन एक मतदाता और नागरिक के नाते जो उलझन आपके सामने है, वही मेरे सामने भी है।

इस परिस्थिति में अपना विचार प्रकट करते हुए श्री जयप्रकाश नारायण ने कहा कि आज देश में विचार-निष्ठ राजनीतिक दल नहीं के बराबर हैं। एक ही पक्ष के अन्दर अनेक प्रकार के भेद भरे पड़े हैं। जाति, धन, सत्ता की कुर्सी के लोभ आदि से प्रेरित होकर दल-बदल होते रहते हैं। दलों की परिस्थिति ऐसी तरल है कि स्थिर और सुदृढ़ सरकार बनाने की क्षमता उनमें नहीं रही है। ऐसी हालत में दलों का ध्यान छोड़कर उम्मीदवारों के चारित्र्य को सामने रखते हुए अच्छे उम्मीदवारों को वोट देना चाहिए।

आपने कहा कि अच्छे आदमी की परिभाषा करना कठिन है। लेकिन मतदाता अपनी चेतना के आधार पर देखें और निर्णय करें कि किस आधार पर वोट देना है।

आपने कहा कि ग्रामीण स्तर पर यह भी प्रयोग होने चाहिए कि एक ही दिन एक ही मंच पर क्षेत्र के सारे उम्मीदवारों को बुलाये जायँ। उनकी बातें सुनी जायँ। स्पष्टता के लिए प्रश्नोत्तर भी हों। और उसके बाद उनको गाँव से इस निवेदन के साथ विदा कर दिया जाय कि गाँव में गलत ढंग से प्रचार करने और फूट पैदा करने के लिए वे दुबारा आने का कष्ट न करें। आपने देश के सभी राजनीतिक दलों से अपील की कि कांग्रेस के विरोधवाद का पिछला सिलसिला समाप्त करें और विचार की निकटता के आधार पर सभी लोग एकसाथ मिलकर मिली-जुली सुदृढ़ सरकार बनायें।

आपने चेतावनी दी कि अगर इस मध्यावधि चुनाव के बाद भी स्थायी सरकार नहीं बनी, तो लोकतंत्र का भविष्य खतरे में है। तानाशाही को लोकतंत्र का विकल्प माननेवालों को पशुता की ओर ले जाने की प्रवृत्ति का द्योतक बताते हुए तानाशाहीवाले मुल्कों के अनुभव सुनाते हुए कहा कि भारत का भविष्य एकमात्र लोकतंत्र के संरक्षण में सुरक्षित है।●

३० जनवरी '६९ के विशेषांक में

पढ़ें, गांधी-युग के वरिष्ठ मनीषी आचार्य कृपालानी द्वारा प्रस्तुत वर्तमान हिंसक संदर्भ में गांधी की याद!...और, और भी...!

आन्दोलन के भविष्य को ध्यान में रखकर उसकी व्यूह-रचना की जाय

—धीरेन्द्र भाई की संघ-अध्यक्ष को सलाह—

उत्तर प्रदेश में गत एक महीने की ग्रामदान-यात्रा पूरी करके दरभंगा वापस लौटते हुए वाराणसी में धीरेन्द्र भाई ने सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष मनमोहन चौधरी से पूरे आन्दोलन के सन्दर्भ में एक महत्त्वपूर्ण पहलू पर चर्चा करते हुए कहा कि अगर गांधी-जन्म शताब्दी-वर्ष में भविष्य को ध्यान में रखकर आन्दोलन की व्यूह-रचना नहीं की गयी, तो २ अक्तूबर १९६९ के बाद आन्दोलन में बहुत बड़ा उतार आयेगा, ठीक वैसा ही जैसा कि १९५७ के बाद हुआ था। उन्होंने कहा कि अब समय आ गया है, जब कि इस पहलू पर गम्भीरतापूर्वक सोचा जाना चाहिए। आपने कहा कि ग्रामसभाएँ अपने आप काम कर लेंगी यह ठीक है, लेकिन बीच के समय में प्रेरणा देनेवालों की जरूरत तो है ही। आज तो स्थिति यह है कि बिना बाहरी कार्यकर्ता के ग्रामसभा की बैठक भी नहीं बुलायी जा सकती है।

कम से कम एक ब्लाक में एक कार्यकर्ता तो होना चाहिए, जो लोगों को प्रेरणा दे सके। इसलिए नौजवानों को रिक्रूट करने की योजना बनानी चाहिए। जगह-जगह शिविरों, गोष्ठियों के आयोजन हों तो हमें कार्यकर्ता मिल सकेंगे। धीरेन्द्र भाई ने आन्दोलन की व्यूह-रचना के बारे में कहा कि लोकमानस में यह बात घुसा देनी है कि क्या करना है और कैसे करना है। भारतदान तक प्राप्ति-अभिमान तो चलना ही चाहिए, साथ ही जगह-जगह लोकयात्राओं के आयोजन भी होने चाहिए। ये लोकयात्राएँ छोटे-छोटे क्षेत्रों में आयोजित की जायें। उन्होंने आगे कहा कि आन्दोलन के सन्दर्भ में मेरा इस बात का आग्रह नहीं है कि कार्यकर्ता की जीविका उसके अमुक प्रकार के श्रम से ही निकले। वह चाहे कोई भी काम करके जीविका चलाये—चाहे तो दुकान खोल ले, कहीं किसी स्कूल में शिक्षक हो जाय, या चन्दा से इकट्ठा कर ले। इस प्रकार कार्यकर्ता जीविका में स्वावलम्बी हो और विचार-शिक्षण का काम करे। अगर ऐसा नहीं होता है तो सर्व सेवा संघ के सामने आर्थिक संकट बना ही रहेगा।

धीरेन्द्र भाई ने मनमोहन भाई से कहा कि इस सम्बन्ध में वे एक नोट बनावें और अगली प्रबन्ध समिति की बैठक में इस पर चर्चा करें।

मनमोहन भाई ने अपनी सहमति प्रकट की और कहा कि मेरा भी मानना है कि अगर आन्दोलन की व्यूह-रचना पर सोचा नहीं गया तो गांधी-शताब्दी के बाद उतार आयेगा। उन्होंने उड़ीसा में किये जा रहे प्रयत्नों की चर्चा की, और कहा कि उड़ीसा में यह निश्चय किया गया है कि अगली १५ मार्च तक १०,००० लोग ग्रामदान-प्राप्ति के काम में लगें। अभी पाँच जिले इस काम के लिए चुने गये हैं। शिविर के माध्यम से इतने कार्यकर्ता हमें मिलेंगे ऐसी आशा है। उन्होंने कहा कि हर गाँव में हमारा प्रवेश होगा और आशा है कि २० प्रतिशत गाँव ग्रामदान में आ जायेंगे। उन्होंने कहा कि ग्राम शान्ति-सेना गुरिल्ला शान्ति-सेना है, ऐसा हम मानते हैं और गाँव-गाँव में गुरिल्ला शान्ति-सेना के संगठन का प्रयास हम कर रहे हैं। उन्होंने कहा कि उड़ीसा के वरिष्ठ कार्यकर्ता नन्द-किशोर दास और श्री नव बाबू ने निश्चय किया है कि इस काम में वे अपना पूरा समय देंगे।

धीरेन्द्र भाई ने उनके इस तरीके को पसन्द किया और कहा कि हर प्रदेश और जिले के कार्यकर्ताओं को इस योजना की जानकारी मिलनी चाहिए। —विशेष संवाददाता

बिहार में ग्रामदान-प्रखंडदान

(२४ दिसम्बर '६८ तक)

जिला	ग्रामदान	प्रखंडदान	जिलादान
पूर्णिया	८,१५७	३८	१
सहरसा	२,३९०	२३	१
भागलपुर	४९५	४	—
संथाल परगना	१,०७४	३	—
मुंगेर	२,१६१	२६	—
दरभंगा	३,७२०	४४	१
मुजफ्फरपुर	३,९१७	४०	१
सारण	३,७७१	४१	१
चम्पारण	२,८९०	३६	१
पटना	४८	—	—
गया	१,२९३	४४	—
शाहाबाद	११४*	५	—
पलामू	८०४	१६	—
हजारीबाग	१,२७३	५	—
राँची	४८	—	—
धनबाद	५४८	६	—
सिंहभूमि	४६१	४	—
कुल :	३३,१९४	३३५	६

* अपूर्ण

— बिहार ग्रामदान-प्राप्ति समिति, पटना ३

वल्लभस्वामी की पुण्यतिथि के अवसर पर वल्लभ-निकेतन में स्नेह-सम्मेलन

विगत ८ दिसम्बर '६८ को स्व० वल्लभस्वामी की पुण्यतिथि के अवसर पर वल्लभ-निकेतन, बंगलौर में स्नेह-समेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में आचार्य काका कालेलकर, दादा धर्माधिकारी, शंकरराव देव, अण्णासाहब सहस्रबुद्धे, एस० जगन्नाथन् ने श्री वल्लभस्वामी का स्मरण करते हुए उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की!

मथुरा जिलादान का निश्चय

मथुरा, २३ दिसम्बर। आज नगर तथा जिले के कार्यकर्ताओं की सभा में निश्चय किया गया कि ११ सितम्बर, '६९ 'विनोबा-जयन्ती' के पूर्व ही मथुरा-जिलादान पूर्ण किया जाय।

www.vinoba.in

सामयिक चर्चा

सत्ता का विकेन्द्रीकरण

केन्द्रीय सरकार और राज्य-सरकारों के बीच चल रही अधिकारों सम्बन्धी खींच-तान पर अपनी राय प्रकट करते हुए श्री जयप्रकाश नारायण ने २३ दिसम्बर '६८ को पटना में कहा कि बहुसंख्यक जनसंख्या और विविधताओंवाला देश होने के कारण यह स्वाभाविक है कि जैसे-जैसे विभिन्न प्रदेशों में गैर-कांग्रेसी सरकारें शासनारूढ़ होंगी, वैसे-वैसे वे केन्द्रीय सरकार पर अधिकार बाँटने के लिए दबाव डालेंगी। केन्द्र में चूँकि प्रदेशों के ही प्रतिनिधि जाते हैं, इसलिए राजनैतिक कारणों से केन्द्र अधिक समय तक इस दबाव का प्रतिरोध नहीं कर सकेगा। अपना विचार स्पष्ट करते हुए श्री जयप्रकाशजी ने कहा कि कोई वजह नहीं है कि विकेन्द्रीकरण की यह प्रक्रिया प्रदेश की राजधानियों तक पहुँचकर रुक जाय, इसका कोई औचित्य नहीं है। वस्तुतः यदि ऐसा हुआ तो यह लोकतंत्र की भावना और लक्ष्य के विपरीत होगा। एक लोकतांत्रिक और दूरदर्शी केन्द्र को नीचे की ओर सत्ता के जाने की इस प्रक्रिया को राज्यों से नीचे जिलों तक पहुँचाने में सक्रिय रुचि लेनी चाहिए, ताकि राज्य-सत्ता सिर्फ १६ प्रदेशों तक वितरित होने की जगह देश के कुल लगभग ३५० जिलों तक पहुँच सके।

इस प्रक्रिया द्वारा राज्यों की बढ़ती हुई शक्ति मर्यादित होगी और केन्द्र संघीय प्रशासन के कारण अपने आप सुदृढ़ होता जायेगा। इस प्रक्रिया से शासन का ढाँचा और अधिक लोकतांत्रिक होकर सामान्य जन को प्रशासन में और अधिक भागीदार बनायेगा।

इस प्रक्रिया का ही एक नजदीकी कदम यह होगा कि उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्य-प्रदेश जैसे जो बड़े-बड़े प्रदेश हैं, उन्हें छोटा किया जाय। पाँच हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेशों को छोड़कर बाकी सभी प्रदेश प्रायः भाषायी राज्य हैं। बड़े प्रदेशों के विघटन से जहाँ एक ओर सुगठित, सक्षम और जनता के और निकट रहनेवाले राज्यों की रचना संभव होगी वहीं भाषा सम्बन्धी आपाधापी भी बहुत हद तक कम हो जायेगी।

भारत : गांधी-विचार से दूर

दिल्ली विश्वविद्यालय के समाजशास्त्र विभाग के सदस्यों के बीच में बोलते हुए दिल्ली में २८ दिसम्बर, '६८ को हुए श्री जयप्रकाश नारायण ने कहा कि भारत का संयोजन इस देश को गांधीजी की धारणा की समाज-व्यवस्था से दूर हटा रहा है। गांधीजी होते तो उन्होंने औद्योगीकरण के लिए होनेवाली पागलों जैसी दौड़ को रोकने की कोशिश की होती।

जयप्रकाशजी ने कहा कि संयोजन के चलते एक ओर शहरों में गन्दी-घिनौनी बस्तियाँ फैलती जा रही हैं, दूसरी तरफ गांव असभ्यता और पिछड़ेपन की हालत में पहुँच रहे हैं। लगता है कि अभी तक भारत 'गुलामी की मनोभावना' से छुटकारा नहीं पा सका है। यद्यपि आप प्राध्यापक हैं, फिर भी आपके काम की यहाँ कदर नहीं होगी जबतक कि कहीं बाहर उसे प्रतिष्ठान मिल जाय।

जयप्रकाशजी ने कहा कि भारत में शायद आचार्य विनोबा भावे और उनके अनुयायी ही ऐसे लोग हैं, जो गांधीजी की कल्पना की समाज-व्यवस्था स्थापित करने की कोशिश में लगे हैं। विनोबाजी ग्रामदान के द्वारा अपने ढंग से प्राथमिक समुदायों की रचना कर रहे हैं। भारत के लाखों गाँवों के रूप में इन प्राथमिक समुदायों के घटक पहले से मौजूद थे। इन समुदायों को दूसरे समुदायों के साथ और अन्त में औद्योगीकरण तथा विकास के साथ भी अनुबन्धित किया जा सकता था।

महात्मा गांधी ने जिस समाज-व्यवस्था की अवधारणा की थी, वह प्राथमिक समुदायों का लहरों जैसा वृत्त था, जिसके बीच में व्यक्ति अवस्थित था। स्वतंत्रता मिलने पर गांधीजी ने कहा था कि हमें अभी तक नैतिक, सामाजिक और आर्थिक आजादी नहीं हासिल हुई है। अन्त में श्री जयप्रकाशजी ने कहा कि विनोबाजी और उनके साथी जितना कुछ कर रहे हैं, वह काफी नहीं है। ऐसे इंजीनियरों, प्राविधिकों, अर्थशास्त्रियों, समाजशास्त्रियों और राजनीति-वेत्ताओं के आगे आने पर ही इस लक्ष्य की पूर्ति हो सकती है, जिनमें मौलिक और वास्तविक क्षमताएँ मौजूद हैं।

अपराधी राजनीति

२८ दिसम्बर, '६८ को ही इन्द्रप्रस्थ इस्टेट में आयोजित साम्प्रदायिकता-विरोधी द्वितीय राष्ट्रीय सम्मेलन के अध्यक्ष-पद से बोलते हुए आपने कहा कि राजनैतिक दलों ने धर्म-निरपेक्षता के प्रति उपेक्षा की नीति अपनाते हुए सत्ता प्राप्त करने के लिए ऐसी नीति अपनायी, जिससे साम्प्रदायिक संगठनों को बढ़ावा मिला।

जयप्रकाशजी ने कहा कि सम्प्रदायवाद धर्म का दुरुपयोग कर लेता है तो इसमें दोष धर्म का नहीं है। असली अपराधी तो राजनीति है, जिसके पास-पास ही अर्थ-नीति भी रहती है।

अब तक सम्प्रदायवाद से किसी धार्मिक लक्ष्य की पूर्ति नहीं हुई है। सम्प्रदायवाद की असली प्रेरणा हमेशा राजनीतिक, आर्थिक या सामाजिक ही रहती आयी है।

समझदारी की बातें कहकर वोट प्राप्त करने के मुकाबिले साम्प्रदायिकता का हौवा खड़ा करके वोट हासिल करना बहुत आसान रहा है। देश में जो दल धर्म-निरपेक्षता के हिमायती हैं, उन्हें चेतावनी देते हुए जयप्रकाशजी ने कहा कि यदि वे तोड़ने और फूट पैदा करनेवाली ताकतों का मुकाबिला नहीं करेंगे तो भविष्य अन्धकारमय होगा।

जयप्रकाशजी ने अपने उद्‌गार जारी रखते हुए कहा कि आज देश की परिस्थिति का सबसे शोकजनक पहलू यह है कि देश के सबसे ऊँचे तबके के बुद्धिवादी लोग भारत के नवजागरण के कार्य में अपना ठोक रोल नहीं अदा कर रहे हैं। इसीका नतीजा है कि ऊँची विद्या अर्जित करने के स्थान भी सम्प्रदायवाद के चलते बदनाम हो रहे हैं।

जयप्रकाशजी ने हिन्दू और मुस्लिम-सम्प्रदायवाद का विशेष रूप से जिक्र करते हुए कहा कि हिन्दू-सम्प्रदायवाद दूसरे सम्प्रदायवादों से अधिक विध्वंसकारी है। चूँकि भारत की जनसंख्या में से अधिकांश लोग हिन्दू हैं, इसलिए हिन्दू-सम्प्रदायवादी आसानी से अपने→

www.vinoba.in

राजस्थान सर्वोदय-सम्मेलन सम्पन्न

कार्यकर्ताओं में संकल्पबद्ध होकर प्रदेशदान के काम में जुट जाने की अभूतपूर्व प्रेरणा का संचार

जयपुर : ३१ दिसम्बर '६८। पन्द्रहवें राजस्थान सर्वोदय-सम्मेलन का ऐतिहासिक आयोजन आज सम्पन्न हो गया। विनोबा की पुकार और हाल में ही हुए शराबबन्दी आन्दोलन की प्रदेशव्यापी जागृत प्रेरणा के बल पर ग्रामदान से प्रदेशदान तक की मंजिल पूरी करने का तूफानी-संकल्प लेकर कार्यकर्ता अपने-अपने क्षेत्रों में वापस लौट गये।

इस महत्त्वपूर्ण सम्मेलन की अध्यक्षता श्री जयप्रकाश नारायण ने की। ३० दिसम्बर '६८ को इस अवसर पर नीम का थाना का प्रखण्डदान जयप्रकाशजी को समर्पित किया गया। आपने भाषण करते हुए कहा कि अपने अस्तित्व के लिए वोटों पर निर्भर रहनेवाले किसी भी राजनीतिक पार्टी से यह आशा करना बेकार है कि वह देश में सामाजिक, आर्थिक तथा कृषि-क्रान्ति ला सकेगी।

आपने कहा कि देश में राजनीतिक स्थिरता ग्रामदान-आन्दोलन से ही आ सकती है। इसके लिए गाँव-गाँव में नया नेतृत्व खड़ा करना होगा और ग्रामदानी ग्रामसभाओं को उसका आधार बनाना होगा। इसी संदर्भ में आपने कहा कि चूँकि प्रदेश राजनीतिक इकाई है, इसलिए प्रदेश के पूरे गाँवों को ग्रामदान में लाने के लिए प्रदेशदान का आन्दोलन तूफान की गति से चलना चाहिए।

को भारतीय राष्ट्रनादी कहकर अपने विरोधियों को राष्ट्र-विरोधी बता सकते हैं।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का जिक्र करते हुए जयप्रकाशजी ने कहा कि धर्म-निरपेक्षत शक्तियों के दब्बूपन के कारण यह जनसंघ को संचालित करनेवाली असली शक्ति बन गया। जनसंघ धर्म-निरपेक्षता के बारे में जो कुछ कहता है, उसको उस समय तक गंभीरतापूर्वक नहीं माना जा सकता, जबतक वह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के तंत्र से अपनी कड़ियाँ अलग नहीं कर लेता।

मुस्लिम-सम्प्रदायवाद का जिक्र करते हुए जयप्रकाशजी ने कहा कि इसलाम की कुछ गलत व्याख्याओं और कुछ ऐतिहासिक कारणों और हिन्दू-सम्प्रदायवाद की प्रतिक्रिया के चलते एक ऐसे सम्प्रदायवाद का जन्म हुआ जो खुद मुसलमानों और मुल्क, दोनों के लिए खतरनाक हैं। इस खतरे का स्रोत है—'जमायत-ए-इसलामी'। यह जमायत भारतीय राष्ट्र को अधार्मिक मानती है, जिसके नीचे मुस्लिम खुशी की जिन्दगी बिता नहीं सकते।

मुरादाबाद में ग्रामदान अभियान

मुरादाबाद जिले की बिलारी तहसील में १५ दिसम्बर से २२ दिसम्बर '६८ तक ग्रामदान-अभियान चला। प्रथम दो दिन बिलारी में कार्यकर्ता-शिविर हुआ। कुल तीन सौ से अधिक कार्यकर्ता तथा शिक्षक शिविर में रहे। १७ तारीख को प्रातः कार्यकर्ता निकल पड़े। १७ से २२ दिसम्बर तक कार्यकर्ता २५० ग्रामों में पहुँच पाये। १४३ ग्रामों की आबादी के ७५ से १०० फीसदी तक परिवारों ने ग्रामदान के घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर अथवा अंगूठे द्वारा सही की।

इस प्रकार लगभग ५१ प्रतिशत ग्राम तथा ७६ प्रतिशत परिवार ग्रामदान में सम्मिलित हुए। बिलारी तहसील के लगभग ५० ग्राम और, जनवरी के प्रथम पक्ष में ग्रामदान में सम्मिलित हो जायें और बिलारी से लगी अन्य तहसील सम्भल फरवरी तक ग्रामदान में आ जायँ, इस प्रकार की योजना जिले के कार्यकर्ता बना रहे हैं। —हरिप्रसाद वैद्य

संयोजक, जिला ग्रामदान-प्राप्ति समिति

बलिया में तरुण-शिविर

रसड़ा (बलिया) ३१ दिसम्बर '६८। जिलादान के बाद जिले में आगे के काम को गति और शक्ति देने के लिए तरुण-शिविरों का सिलसिला चल रहा है। पहले और दूसरे शिविर दो इंटर-कालेजों में सितम्बर-अक्तूबर में हुए थे। तीसरा ग्रामीण तरुणों का शिविर २५ से ३१ दिसम्बर '६८ तक रसड़ा में सम्पन्न हुआ। शिविर का उद्घाटन श्री विचित्र नारायण शर्मा ने और समापन श्री धीरेन्द्रभाई ने किया। शिविर में अन्तरराष्ट्रीय युवक-संगठन के मंत्री कृष्णस्वामी तथा आचार्य राममूर्ति का मार्गदर्शन मिला। लगभग ३० शिविरार्थियों ने इस शिविर में भाग लिया।

श्रद्धाञ्जलि

बुलन्दशहर (उ० प्र०) से प्राप्त-सूचनानुसार जिला सर्वोदय मण्डल के अध्यक्ष स्वामी अभयानन्दजी २२ दिसम्बर '६८ को दिवंगत हो गये। सन् १९५४ से ही जिला सर्वोदय मण्डल के अध्यक्ष के रूप में आप सर्वोदय-आन्दोलन का संयोजन और संचालन करते रहे थे। अपनी सेवा-भावना और कर्मठता के कारण स्वामीजी लोगों के अत्यन्त प्रिय स्वजन बन गये थे।

× × ×

उत्तर प्रदेश के सुपरिचित रचनात्मक कार्यकर्ता श्री रामनाथ टण्डन का कानपुर में दिनांक २७ दिसम्बर '६८ को ६४ वर्ष की आयु में देहावसान हो गया। आप जीवन के प्रारम्भिक काल से ही गांधी-विचार के अनुयायी रहे। वर्षों तक आप खादी-भवन, दिल्ली के व्यवस्थापक रहे। स्वराज्य-आश्रम कानपुर तथा नरवल आश्रम में भी आपने महत्त्वपूर्ण कार्य किये।

× × ×

विशाल सर्वोदय-परिवार की ओर से अब इन अशरीरी आत्माओं को हार्दिक श्रद्धाञ्जलि!

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०; या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।